चतुर्थ अध्याय
मध्ययुगीन भारतीय समाज चिंतन

क— शैववाद
ख— बौद्धवाद
ग— इस्लामवाद
घ— भक्तिवाद
ड.— सिक्खधर्म
च— मध्यकालीन सामाजिक दृष्टिकोण
क- शीववाद

मध्यभारत के सांस्कृतिक और धार्मिक सुधारवाद का युग कुछ शीव और वैष्णव संतों के सांनिध्य में प्रारम्भ हुआ जिन्हें क्रमशः अदिचि तथा अल्पध कहते हैं। इन्होंने वैयक्तिक भक्ति के पौराणिक आदर्श का तमिल कविताओं में प्रचार किया। भक्ति और धार्मिक उत्साह के उनमें प्रबल भाव थे। 1 शीववाद भूतकाल में व्याप्त होते हुए भी शंकर के अस्तित्वाद के साथ-साथ एक प्रथम पन्थ के रूप में अधिक सुदृढ़ बन गया। सभी प्रकार के पूजा पाठों को शंकर ने ख़ंडन करने के साथ ही सामाजिक भावना के प्रत्युत्तर में लिंग की पूजा की। जिसका अनुसरण अब भी उनके उत्तराधिकारी करते हैं। 2 सृष्टि का कार्यात्मक कारण पशुपति अथवा शिव को माना जाता है। शिव अपनी अनुक्रम्य के कारण स्वयं की इच्छा से ही अपने को जगत में अभिव्यक्ति करता है, ताकि विभिन्न आत्माओं परमात्मा के साथ एकत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकें और इस प्रकार अपने अज्ञान तथा कर्मफलों के कारण आवागमन के चक्कर से मुक्ति प्राप्त कर सकें। 3 शिव को सर्वोच्च आध्यात्मिक सार माना जाता है और वही समस्त जगत के पार्श्व में क्रियात्मक सिद्धान्त है। 4

शीव संतों का उदय दक्षिण में सातवीं से नवीं शताब्दी के बीच हुआ उन्होंने शीव पन्थ की प्रशंसा और शिव को सर्वोच्च ईश्वर मानने के लिए लोगों को प्रतिसाहित किया। शीववाद के दो पंथों लिङ्गात और सिद्धार में ये संत विभाजित थे। लिङ्गात सिद्धान्त का शीववाद से घनिष्ठ सम्बन्ध था और यह 12वीं शताब्दी में विकसित हुआ। लिङ्गायतों ने स्वयं अपने विचारों का विकास
किया जिनसे जीवन के प्रति उनके सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण का पता लगता है।

दक्षिण में शैववाद विशेषतः धीर शैववाद के विकास का क्रम बस्तव ने तेज
किया 'जिसने शैवपनथ' में औजस्वी, उत्साह, व्यवहारिकता, तथा यथार्थवाद, भरके
उत्थान किया। उसने शारीरिक श्रम तथा जीवन के पेशें के समान पर बल
dिया। जातीय भेदभावों का अन्त किया और स्त्रियों को समानता का स्तर प्रदान
kिया। परन्तु बस्तव का यह प्रयत्न इस्लाम के प्रसार और धर्मपरिवर्तन की नीति
के विरूद्ध शैववाद की यह प्रतिक्रिया थी। लिंगायतवाद के प्रमुख वक्ता बस्तव ही
थे। संतों में पायी जाने वाली पवित्रता को वे सिंग मानते थे। संतों की यह
pवित्रता उनके उत्तराध्यक्षयों में संचारित हो जाती थी। लिंगायत लोग एक
ईश्वर में विश्वास करते थे उनके लिए प्रेम ही ईश्वर की सृष्टि है। ईश्वर के प्रति
भक्ति, मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन था। सर्वोच्च सत्ता के प्रति आत्मसमर्पण
की भावना ही भक्ति का मूल आधार थी। शैववाद की शाखा के रूप में
लिंगायतवाद ब्राह्म, दार्वी, बलियां आदि में विश्वास नहीं करता था। तीर्थस्थानों
एवम् गंगास्नानों में उनकी कोई आस्था नहीं थी, वे जाति व्यवस्था को नहीं
मानते थे। यहाँ तक कि कोई पेंरिया भी लिंगायत पनथ में सम्मिलित होता था तो
उसको भी ब्राह्मण से कम नहीं समझा जाता था। लिंगायत सम्प्रदाय वामाचार के
विरोध के साथ-साथ ब्राह्मणों के वर्णाश्रय धर्म का भी विरोध करता था।

लिंगायतों में ऐच्छिक विवाह हुआ करते थे। विवाह पूर्व लड़की की
स्वीकृति आवश्यक थी। बाल-विवाह को सामाजिक बुराई माना जाता था। तलाक
का प्रचलन था, विधवा स्त्रियों को समान की दृष्टि से देखा जाता था और उन्हें
पुनः विवाह करने की अनुमति थी। मृतकों के लिए कोई श्राद्ध नहीं किया जाता
था। लिंगायत आवागमन के साधन को नहीं मानते थे। सभी लिंगधारी जो दैविक
संकेत को धारण करते थे। साथ-साथ खाते थे आपस में शादी विवाह करते थे
और सामाजिक तथा भावनात्मक एकता में आबद्ध थे। लिंगायतों ने ब्राह्मण विरोधी
बातों, विधवा विवाह आदि का अनुसरण किया। और इस प्रकार सामाजिक गत्यात्मक म तत्त्वों को सुधार किया।

लिंगयतो का सामाजिक दृष्टिकोण उदारवादी था। जब कोई व्यक्ति भगवान लिंग का पुजारी बन जाता है तो उसके लिए जातिवाद अथवा वर्णव्यवस्था का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। प्रात्येक व्यक्ति का शरीर ईश्वर का शरीर होता है। भक्त का सम्बन्ध किसी जाति से न होकर संघ से होता है। लिंगयतो ने हिन्दू समाज में व्याप्त जाति सम्बन्धों की निर्धारण को इस प्रकार से सिद्ध किया। अपने आप को लिंगयतो ने शिव का वीर अनुनायी माना जिन्होंने वर्णव्यवस्था की निन्दा की। जाति कर्तव्यों के अनुसार से सुख समृद्धि होती हो ऐसा कुछ नहीं है। केवल लिंग स्पर्श से ही जो कि दैविक संकेत है व्यक्ति का जीवन सुखी बन सकता है। लिंगयत समाज विश्वास के अनुसार मानव प्राणियों के लिए मंदिरा एवमू मांस का विरोध था। आत्मसंयम पर विशेष बल और विधवा विवाह का समर्थन किया। ब्रह्मचार और धार्मिक कार्यों में आड़म्बर की निन्दा की जाती थी।

दार्शनिक विचारों में आवश्यक तुलनात्मक कविता करने वाला का सगाँठ सिद्धार था। इनमें तैयर तथा योगी लोग भी थे वे भी जाति व्यवस्था को नहीं मानने थे। ब्राह्मणों से मेल मिलाप सिद्धार पसंद नहीं करते थे। "सिद्धार लोग अपने लेखों में ब्राह्मणों का मजाक उड़ाते थे और उनकी सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक कर्मकाण्डों तथा पवित्र ग्रन्थों के प्रति घृणा व्यक्त करते थे। वे एकेकयादी और मौन साधक थे। जिन्होंने शिव नाम को ईश्वर रूप में माना परमु शिवपथ में उन्होंने अन्य बातों का जिनका विश्वास ईश्वरवाद से कोई सम्बन्ध नहीं था खंडन किया। उनका श्रमवध कल्य उस नित्य प्रकाश को ग्रहण करना और पाना था जिसे वे प्राण ज्योति कहते थे।" सिद्धार्थ ने केवल एक ही ईश्वर को एक सच्चे सत्गुरु के रूप में माना और उन्होंने अनेक जन्मों के सिद्धात और हिन्दू पवित्र ग्रन्थों की सत्ता को अस्वीकार कर दिया।" सिद्धार्थ प्रेम और भक्ति गर्भ के
अनुयायी के केवल अज्ञानी लोग ही प्रेम और ईश्वर को भिन्न मानते हैं। ईश्वर और प्रेम दोनों एक ही है। जो दोनों को एक मानते हैं उन्हें शक्ति मिलती है और प्रेम के रूप में ईश्वर से मिलन होता है। गुरूओं की शिक्षा के प्रति भक्ति भाव रखना अनिवार्य है क्योंकि ईश्वर की उपासना में निर्देशन की आवश्यक होती है। सिद्धार भी लिंगायतों के समान जाति भेदभावों को नहीं मानते थे।

उनके अनुसार 'हमारे लोग' जाति की क्रूरता से मुक्त होकर कब एक महान मातृत्व में आवद होंगे। वांछितकला में इन बातों में यह रुढ़िबद्ध समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावनाएं प्रदर्शित करता है।

मध्ययुग में शैववाद नाथ सम्प्रदाय, सिद्ध सम्प्रदाय और भक्ति सम्प्रदाय जैसे छोटे-छोटे पंथों में विकस हो गया। 'समकालीन चित्रकला से यह स्पष्ट होता है कि इन सम्प्रदायों ने शैववाद से सम्बन्धित कुछ आत्मनिर्देशक कर्मकाण्डों का प्रयोग तथा अभ्यास किया। सारी देह को रख लपेटना, लम्बी जाटों का रखना और ध्यानाक्ष या रहने के कारण ये एक पूर्णक वर्ग बन गया।

सामान्यत: सभी साधक नगन रहा करते थे। कुछ एकांत जीवन पसंद करते थे और अपने शरीर को प्यास, गर्मी सर्दी तथा वर्षा से कष्ट देते थे। दुहरी के चमकते सूर्य की ऊष्मा में ध्यान निर्णय के सहारे बैठकर वे प्रायस्चित्तों का अभ्यास करते थे। कभी—कभी दृश्यों की दृष्टियों से अपने को वांछित लटकर रहते थे एवं कभी—कभी अपने हाथों व पैरों को कई धरों तक बिना किसी आराम के गतिहर्व रखा करते थे।  शैववाद इस तरह से आत्मपीड़ा के सिद्धांत तथा आत्मनिर्देशक प्रकार के सन्यासवाद में परिणत हो गया। सामाजिक दृष्टि से ये सभी बातें निरन्तर थीं जिससे सन्यासी लोग विभिन्न प्रकार के नरों की आदतों में पड़ गए ताकि व्यवहारिक जगत की समस्याओं को मुला सके। निरन्तर ही सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में उनका यह यथार्थवादी दृष्टिकोण नहीं था।
वैष्णववाद

रामायण के सम्बन्ध में सामान्य रूप से यह माना गया है कि उसके प्रथम और अंतिम काण्ड बाद में जोड़े गये हैं। कुछ प्रक्ष्णिंद्राणों को छोड़कर उसका मूलांश दूसरे से छठे कांड तक है, जिसकी रचना किसी कवि ने अनुमानतः ई०प० तीसरी शताब्दी में की थी, उस समय तक प्राचीन धर्मशास्त्र में इन्द्र को ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त था, विष्णु को नहीं। उसमें राम का विज्ञान विष्णु के अवतार के रूप में न होकर केवल मनुष्य के रूप में था। उनमें देवतारूपण तथा विष्णु के साथ उनकी अभिन्न रूपता की प्रस्तापना परिवर्तित प्रक्ष्णिंद्राणों द्वारा बाद में ही की गई। विद्वानों के अनुसार 'रामायण' में वे प्रक्ष्णिंद्राण ईश्वर की दूसरी शताब्दी के अंत में जोड़े गये।

वैष्णव धर्म के इतिहास की जानकारी के लिए महाकाव्य 'महाभारत' का महत्व सर्वापि है, क्योंकि यह ग्रन्थ भक्ति मूलक धार्मिक संप्रदायों के उद्घाटन का तथा वैष्णव देवता वासुदेव कृष्ण, नारायण एवम् विष्णु का सांप्रदायिक परिचय देने वाला सबसे प्राचीन ग्रन्थ है।

आधुनिक अनुसंधानों16 के द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि भारत के यह विषाद महाकाव्य अकाव्य कुशल धर्म शास्त्रियों एवम् टीका कारों तथा अद्याव के प्रतिलिपिकों17 के द्वारा जोड़-जोड़ कर तैयार की गई रचना अथवा विज्ञाताओं समग्रियों को एक स्थान पर एकत्र कर उनके नाम विधिमित्रण से तैयार की गई अन्तर्वती एक श्रृंखला तथा प्रबुद्ध परिकल्पना की एक सामजिक पूर्ण कृति है।

सुकृतेन्द्र के इस महाकाव्य के उपाख्यायों पर भार्गव का प्रभाव बतलाते हैं और उनका अनुमान है कि शास्ति एवम् अनुसारण पर्वों में जो उपदेशात्मक अंश की भस्मार्थ है इसका दायित्व भी भार्गवों पर ही है।18 उनकी धारणा है कि भूगुआं ने धर्म एवम् नीति में विशेषता अर्जित की थी और उन्होंने लोगों ने 'मनुमृति' की रचना की थी, जो 'भूगुसंपिन्ध' के नाम से भी विख्यात है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कहा है कि भूगु 'विष्णु' की उपासना की ओर प्रेरित हो चुके थे।19 और शास्ति
पर्व के ‘भगवदगीता’ तथा ‘नारायणीय’ खण्डों पर भार्गवों का प्रभाव प्रत्यक्ष है।

भूगुण्ड की नारायण के प्रति पक्षपात की कथा पुराणों में भी प्राप्त होती है।

भागवत पुराण में वर्णित में वर्णित है कि ऋषियों ने भूगु को किस प्रकार देवताओं में श्रेष्ठ का पता लगाने का कार्य सोचा था। उन्होंने ब्रह्मा विष्णु और शिव का साक्षात्कार किया और अन्त में नारायण विष्णु को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। पुराणों की गाथानुसार देवी श्री की भूगु की पुत्री कहा गया है जिसे उन्होंने ने नारायण को अपित दिया है।

ब्रह्मणों ने मुख्य रूप से बौद्ध-धर्म का प्रतिरोध करने तथा ब्रह्मण धर्म के सामाजिक युवको बनाए। रहने के उद्देश्य से ही जनसाधारण में व्यापक रूप से प्रचलित लोकप्रिय देवताओं की उपासना पर अपना अधिकार जमाया और उनकी पूजा में अहिंसा के सिद्धांत का, भक्ति की भावना का, और पूजा के त्यों भूतपूर्व प्रभुता के प्रति आज्ञाकारिता के भाव का समावेश किया और इस प्रकार उसे विद्वानों सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप नये सांचे में ढाला। स्त्रियों तथा निम्न वर्णों के प्रति उदार रूख अपनाने के लिए वर्ण यथ्विधा पर आधारित सामाजिक अभिज्ञ का सुरक्षित रखा।

नारायण के उपासक दो प्रकार के थे। एक वे जो वर्ण विवेचकों की अवहेलना करने के साथ ही प्रारंभिक अनुष्ठानों से अभी भी जुड़े हुए थे और पंचरात्रों के नाम से विख्यात थे। दूसरे वे थे जो ब्रह्मणिय समाज व्यवस्था तथा वेदों के प्रमाण को स्वीकार करते थे और भार्गवों के नाम से प्रसिद्ध थे।

वैष्णव धर्म ने उन विद्वेशियों तथा अनायों के आरोपकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिनका पर्वती मुखलमों की तरह न तो अपना कोई प्रबल धर्म था समर्थन अथवा और न सुविभक्ति संस्कृति। भूमिका से स्पष्ट है कि पवित्र धार्मिक संस्कारों तथा ब्रह्मणों की अवहेलना करने के कारण ही पोषक, चोल, ब्रजवंश कंभेज, धर्म, शक, पारस, पहलव, चीनी किरात तथा दरद जातियां शान: शान: शूद्रों की श्रेणी में गिर गये हैं। भागवत पुराण के अनुसार किरात हून,
आंध्र पुलिंद पुक्कस, आमीर, केक, चवन, खस तथा इसी प्रकार की अन्य दुराचारी जन जातियों तवषु पृजन से पवित्र हो जाती है। २५ वैष्णवधर्म ने इस प्रकार से ब्राह्मण धर्म सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक एवं सामाजिक समाज करने के लिए एक प्रभाव साधन प्राप्त किया।

शैववाद और वैष्णववाद में ज्यादा अन्तर तो नहीं था परन्तु दसवीं शास्त्री में पुराणों से अपने विचारों का अनुकरण करने वाले आलवार सम्रादाय के कारण वैष्णववाद, शैववाद से भिन्न एक अलग सम्रादाय बन गया। "आलवार सम्रादाय ने ब्राह्मण धर्म, पुरोहितवाद तथा जाति श्रेणीकरण को चुनौती देने के साथ ही एक सत्य-निष्ठ धर्म की कल्पना की थी। उनके अपने मंत्रों में सभी जीवों के प्रति उनके जन्म और जीवन में स्वर के भेदभाव बिना, देविक अनुकर्मा (दया) की सार्वभौमिकता के लिए निर्देश बल दिया गया। देविक अनुकर्मा और व्यक्ति के आत्म-समर्पण को उन्होंने अपने सार्वभौमिक उत्सव धर्म में साथ-साथ जोड़ा जो कालांतर में, भागवत-धर्म का सार-तत्त्व बन गये। रामानुज-रामानन्दी परम्परा के वास्तविक अनुरोह आलवार सम्रादायी थे, जिन्होंने ईश्वरीय कृपा और मनुष्य की भक्ति पर, मोक्ष प्राप्ति के लिए बल दिया।" २६

शैव सन्तों के समान ही विचार और भावनाएं वैष्णव सन्तों के मंत्रों में मिलती है लेकिन शिव के स्थान पर वैष्णव सन्तों ने विष्णु को मान्यता दी और अन्य देवी देवताओं की अपेक्षा, विष्णु की प्रशंसा में सब कुछ लिखा व गया। वैष्णवों के अनुसार विष्णु अनेकों बार मानव जाति की रक्षा के लिए पृथ्वी पर अवतारित हुए जबकि शिव ने ऐसा नहीं किया। २७ ग्यारहवीं शास्त्री में इसी विचारधारा के कारण शंकर के एकस्वरवाद के प्रति, एक वैष्णव विद्वान उठ खड़ा हुआ। सभी वैष्णव सन्त-ब्रह्मन्तों ने शंकर के एकत्रवाद, मायावाद, आत्मा तथा ब्रह्म के पूर्ण तातादाय और जगत-मिथ्या विचार का खण्डन किया। २८ इन सन्तों ने शंकरवाद का खण्डन संभवतः इसलिए किया कि वह आध्यात्मिक अविवाद और सामाजिक रूढ़िवाद पर आधारित था।
रामानुज (1037–1137) आलवाद–बैश्नबवाद के भागवत तथा भक्ति–सम्प्रदायों से बहुत प्रभावित थे। रामानुज ने शंकर के दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण का कड़ा विरोध किया। उन्होंने ब्रह्म और ईश्वर में कोई भेद नहीं स्थापित किया। ब्रह्म ही ईश्वर है जिसे नारायण भी कहते हैं। अनेकता के सभी तत्त्व ब्रह्म में विद्यमान हैं। उसके अन्दर सभी श्रेणियों की आत्माएं और भौतिक पदार्थ विभिन्न रूपों में हैं।

प्रत्येक वर्तु का आत्मारिक नियन्त्रण कर्त्ता ब्रह्म है। रामानुज का ब्रह्म–सिद्धांत विशिष्टावृत्त कहलाता है अर्थात् ब्रह्म तो एक ही है परंतु उससे जड़ और चेतना दोनों तत्त्व समाविष्ट हैं। ब्रह्म की आत्मा–मोक्ष का यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्म के साथ उसका तात्त्विक हो जाता है। वह आत्मा की स्पाही अनुभूति कर सकती है ताकि उसकी व्यक्तित्व रूपक का भी बने रहे। इस दृष्टि से ही रामानुज, शंकर के इस विचार की कई आलोचना करते हैं जो आत्मा का ब्रह्म के साथ तात्त्विक हो सकता है। अगर शंकर की बात सही मान ली जाये तो उसका अर्थ "अत्मा का विनाश होगा जो मानव प्राणी के लिए किसी भी तहत श्रेयकर नहीं हैं।"

रामानुज के अनुसार भक्ति के बिना, केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं मिल सकता। "भक्ति पूर्ण समर्पण है उस समय भक्ति का विकास होता है। जब निर्धारित कर्त्तव्यों को पूरा करके शास्त्रों के अध्ययन से सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। कर्म और ज्ञान दोनों मन को शुद्ध करते हैं और उसे भक्ति के लिए तैयार बनाते हैं। रामानुज द्विभावक रूप से वैदिक कर्मकार्यों तथा पूजा–पाठों में आस्था रखते थे, परंतु अपने दृष्टिकोण में वे कुछ उदार थे। वह "महान उत्तसाह और उदार सामाजिक दृष्टिकोण के एक आध्यात्मिक नेता थे।"

रामानुज ने शंकर के ज्ञानमार्ग को "अपूर्ण तथा तुच्छ बताया और ईश्वरभक्ति को सर्वोच्च तथा सानन्दी बताया।" जिसके परिणामस्वरूप भक्ति–मार्ग और अधिक आकर्षक तथा जन–प्रयोग बन गया। रामानुज ने मोक्ष का मार्ग सबके लिए खोल दिया। किन्तु भक्ति मार्ग केवल द्विजों के लिए था क्योंकि वह शास्त्रों के ज्ञान पर आधारित था। अन्य लोगों के लिए आत्मसमर्पण अथवा प्रपति मार्ग निष्ठूत किया प्रपति गुरु और ईश्वर दोनों की अनुक्रम में अट्टों विवाद पर
आधारित है। सिर्फ ईश्वर-कृपा से ही मोक्ष संभव हो सकता है। रामानुज द्वारा प्रतिपादित प्रपन्तित का विचार को सदेव घृणा की दृष्टि से देखा और उनके प्रपन्त बनने पर आपल्ल की महत्वपूर्ण बन गया, फिर भी प्रपन्त बने की स्थिति बड़ी विचित्र थी, क्योंकि उसमें अपना सब कुछ त्यों कर भिक्षारी बन कर, तथा दीनभीन होकर, ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण गुरु की शिक्षा-दीक्षा के अनुसार करना पड़ता था। रामानुज ने उच्च जातियों की विशेष सुविधाओं को ज्यो का त्यों बनाये रखने के साथ ही शुद्धों तथा अवांनी के लिए भी एक मार्ग खोला ताकि वे ईश्वर-कृपा प्राप्त कर सकें। उन्होंने साल में एक निर्धारित दिन शूद्धों को कुछ निपटते मन्दिरों में जाने का प्रवचन किया। उन्होंने सतती नाम के शूद्धों के समूह को अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित करके मन्दिरों में जाने की दीक्षा दी। वेदान्त विचारधारा के अन्तर्गत आने वाले सभी चिन्तकों ने जाति व्यवस्था की निर्दिष्टता को बनाये रखा। सामाजिक नियतिवाद के दर्शन को इन्होंने इस प्रकार सुरक्षित रखा जिससे परम्परागत धर्म के आदर्श ज्यों के त्यों बने रहें। संकर, भाष्कर, यादव, प्रकाश, रामानुज, माधव-सभी ने ब्राह्मणवाद और हिंदू धर्म, शैववाद तथा वैष्णववाद, ईश्वरवादी आयात्वाद और धार्मिक कर्मवाद आदि के हितों की रक्षा करते हुए, प्रतिक्रियावादियों की भूमिका अदा की, क्योंकि अपने सामाजिक दृष्टिकोण में वे सब रूढ़िवादी हो। इन चिन्तकों के सामाजिक रूढ़िवाद तथा ब्राह्मणवादी सुधारवाद को प्रारम्भिक मध्ययुगवाद के पौराणिक साहित्य में और मजबूती प्रदान की। परम्परागत समाज व्यवस्था अथवा जाति नियमों की सुरक्षा में माधव जैसे चितक अत्यधिक दिलचस्पी रखते थे। ब्राह्मणवाद की परम्परा में परिवार तथा विवाह की रीति-रिवाजों को वे बनाये रखना चाहते थे।

वैष्णव प्रवृत्तियों ने शूद्धों के प्रति जिन्हें धर्म के क्षेत्र में बड़े संकुचित और निपटने तत्व का प्राप्त थे, ब्राह्मणी रूख को उदारवादी बनाया - परन्तु वैष्णववाद को भी शासक वर्गों ने वर्ण विभाजित समाज के आधार को बनाये रखने के काम में लिया। रित्यों वैश्यों तथा शूद्धों की नीच जन्म के प्राणियों की
संज्ञा देकर तिरस्कृत किया गया। ऐसा कहा गया कि शुद्धों को द्विजों की सेवा और विष्णु के प्रति भक्ति किये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। यह कर्म सिद्धान्त और उस सामाजिक विश्वास का प्रतिफल है जिसमें जन्म और व्यवस्था के अनुसार कर्मों के अनुपालन की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न जाति के सदस्यों को इस प्रकार के आदर्शों में विश्वास करने के लिए ब्राह्मणी विचारधाराओं द्वारा बाध्य किया गया।

वैष्णववाद रामानुज के पहले कोई प्रभावशाली सिद्धान्त नहीं था। रामानुज ने स्वयं वैष्णववाद की सामाजिक तथा धार्मिक शिक्षाओं के आधार को विकसित किया। रामानुज के प्रभाव से सामाजिक विरोध को उकसायें बिना, तमिल में प्रबन्धों के अध्ययन और प्रसार, मन्दिर मेलों की संस्थान, आदि श्रावणों को जाति-तिलक और वैष्णव सरीसृप-यापन करने की अनुमति और उपविष्णव-मन्दिर में पंचमाहों को साल भर में एक बार ऋषियों की छुट्टी, द्वारा दक्षिण में कुछ सीमा तक वैष्णववाद को जनतात्मक बना दिया। रामानुज ने ‘उच्च जाति’ वालों के लिए भक्तिमार्ग निर्धारित किया, तो शुद्धों को ‘केन्द्र विश्व भक्ति मार्ग’ से संबद्ध होने को कहा। इस प्रकार रामानुज ने द्विजों तथा अधिकांश में एक स्पष्ट विभाजित रेखा बनायें रखी ताकि परम्परागत समाज दर्शन का उत्तंघन न हो और रूढ़ीवाद परिधि में, उनका उदारवाद प्रदर्शित हो।

समय और परिस्थितियों का प्रभाव शंकर के अद्वैतवाद के अलावा रामानुज पर भी पड़ा। भारत में जाति व्यवस्था की कठोरता को वह भी नहीं तोड़ पाये, किन्तु उनके भक्तिवादी दृष्टि ने एक नये विचार की त्योहार को जन्म दिया और दलितों के नन्द में आशा की एक किरण पैदा की। रामानुज के शिष्य रामनवर मध्ययुग के अन्तिम दिनों में भक्ति-आन्दोलन के अनुग्रह थे। उन्होंने सभी प्राणियों की समानता में विश्वास किया। भक्तिवाद के प्रथम चरण का आरम्भ इसी से हुआ जिसका वैष्णववाद से घनिष्ठ सम्बन्ध था। स्वयं रामानुज ने वैष्णववाद को दर्शनिक आधार भक्ति मार्ग में अद्वैत आस्था रखते हुए प्रदान
किया। उनके प्रारम्भिक विकास की अवस्था में रामानुज ने वैण्डवाद और भक्तिवाद को घनिष्ठ सम्बन्धों में आबद्ध किया।

गीता ने भक्तिवाद के व्यक्तिवादी आधार का प्रोपागन्दा किया क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में, भक्ति-आन्दोलन व्यक्तिवादी दृष्टिकोण पर आधारित था। गीता के अनुसार ईश्वर के प्रति भक्ति-अनुराग मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन है। वैविक आत्मा को निकृष्ट भावों से मुक्त करना मुख्य समस्या है और यह केवल “सर्वोच्च ईश्वर, वासुदेव के प्रति पूर्ण भक्ति से ही संभव था।” वासुदेव एक पुनःजनन नाम है जिसकी “देवों के देव के रूप में पूजा की जाती थी।” वासुदेव को कालांतर के कृष्ण के नाम के साथ जोड़ दिया गया जो प्राचीन युग के एक सन्त-राजनीतिज्ञ थे। भगवदगीता का दर्शन वैसे तो बहुत सी बातों में अहिंसीय है, किन्तु वह रूढ़िवादी मताचं, दैविक तथा परस्परवादी है, क्योंकि कृष्ण “प्रचलित धर्म को पूर्ण करने के लिए जन्में न कि उसे पीछे छोड़ने के लिए” और उन्होंने यह शिक्षा दी कि “अपने कर्तव्य का मेरी पूजा के रूप में अनुपालन करो, क्योंकि मैं दैविक सत्ता हूँ।” गीता ने सामाजिक नियतिवाद और ईश्वरवादी भार्यवाद की रक्षा के लिए एक वैदिक तर्क इसी प्रकार से प्रस्तुत किया।

गीता का प्रमुख विषय है भक्ति-सिद्धांत, लेकिन उसे वर्ण व्यवस्था के साथ जोड़ दिया गया है। वर्ण व्यवस्था को मानव स्वभाव में निहित गुण तथा कर्म की अभियवित्त कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण ने स्वयं ‘गुणकर्मनृसार चार वर्णों की सृष्टि की’ यद्यपि आप किसी विरोध कर्म को करना न चाहें, किन्तु आप अपने स्वभाव के अनुसार उसे करने को बाध्य हो जायेंगे। इस प्रकार गीता एक मानव प्राणी को दूसरे से नींव मानने में निहित अन्तर्गत को जन्म की आकारिकता के ऊपर मोक्ष देती है। इससे दैविक सृष्टि के कदंबों से भी सामाजिक भार उत्तर जाता है और इससे गीता कर्म के सिद्धांत के सन्दर्भ में न्यायोपित ठहराने का प्रयत्न करती है।
गीता ने वर्ण तथा गुण-कर्म सिद्धांतों के समर्थन में स्वर्ण गुण सिद्धांत का प्रतिपादन किया। वर्ण व्यवस्था के कार्यात्मक पक्ष को कर्म सिद्धांत के साथ जोड़ा गया। \(^{49}\) कोई भी कर्म जो किसी व्यक्ति को वर्ण व्यवस्था के अनुरूप करना पड़ता है, अपवित्र, अशुभ या पापयुक्त नहीं होता। सभी स्वर्णकर्मकर्ताओं की मोक्ष प्राप्त करने की वास्तविक समानता को ब्राह्मणत्व को उच्चता पर बढ़ा चढ़ाकर बल देकर, क्रमिक मोक्ष के उस सिद्धांत को दबा दिया गया जिसमें व्यक्ति जन्म-जन्मान्तर अपने स्वर्णमुनासार कर्तव्यों के अनुपालन द्वारा उच्च वर्ण में जन्म लेता है। \(^{50}\) गीता मोक्ष का लालच देकर वर्णव्यवस्था की पवित्रता का जल्द बनाये रखने चाहती थी, बजाय इसके कि किसी अन्य व्यक्ति का कर्तव्य किया जाए, भले ही वह शुभ कार्य हो। गीता ने इस प्रकार से भक्ति भावना की आड़ में सामाजिक नियतिवाद के तत्वों को सुदृढ़ करने के लिए, वर्णाश्रम धर्म की पुनः स्थापना की और ब्राह्मणी दर्शन को बढ़ावा दिया।

गीता के सामान, भागवत पुराण ने भी ईश्वर-कृपा प्राप्त करने के लिए वर्णाश्रम कर्तव्यों के अनुपालन को अनिवार्य माना। \(^{51}\) लोगों की स्वेच्छा से भक्ति आन्दोलन प्रारंभ हुआ ही ऐसा नहीं है। जनता की अन्तः चेतना उसके समर्थन में नहीं थी। गीता ने उसे ब्राह्मण समाज दर्शन की खाता के लिए लोगों के ऊपर जवान थोपा। गीता ने सामाजिक नियतिवाद तथा दैविक भाग्यवाद के दर्शन की पुष्टि करते हुए, आदमी को ईश्वरवादी-आध्यात्मिक प्रलोमन के अथाह सागर में छोड़ दिया ताकि वह लोकिक जगत की समस्याओं के समबन्ध में कोई ध्यान न दे सके। इस प्रकार सामाजिक नियतिवादियों तथा सामाजिक कर्तव्य-हितों की खाता हेतु गीता ने यह सारा प्रचंड रचा जिसमें अधिकांशत: उसे सफलता मिली, हलातकि उससे प्रतिक्रियावाद, अप्रगतिवाद एवं धर्मन्धावाद के विचारों का ही प्रोषण हुआ जो कालान्तर में अहिल कर सिद्ध हुआ।
(ग) इस्लामवाद

विश्व के प्राचीन धर्मों में इस्लाम धर्म का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ होता है 'शान्ति में प्रवेश करना' इसलिए मुस्लिम वह व्यक्ति है जो परमात्मा और मनुष्य के साथ पूर्ण शान्ति का सम्बन्ध रखता हो। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब थे। इनका जन्म 570-71ई. के लगभग अरब प्रायद्वीप के मक्का नगर में हुआ। मुहम्मद साहब ने समाज व्यवस्था के नवीनरूप को प्रारम्भ किया। मुस्लिम समाज व्यवस्था पूर्णतः धार्मिक विचारों पर आधारित है। कुरान, सुनन्त और हदीस इस्लाम धर्म के मूल माने गये हैं। ऐसा माना जाता है कि कुरान में ईश्वर द्वारा भेजे गये सन्देश लिखे हैं, सुनन्त में मुहम्मद साहब के कर्मों एवं दिनचर्याओं का उल्लेख है और हदीस में उनके द्वारा दिये गये उपदेश समाहित है।

कुरान में पूर्ण धार्मिक जीवन के आदर्श निर्धारित किये गये हैं। इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था और मुस्लिम आचरण पृष्ठियों पर आधारित हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. कलमा पढ़ना — अर्थात इस मन्त्र का पारायण करना कि ईश्वर एक है और मुहम्मद उसके रसूल हैं।
2. नमाज़ पढ़ना — प्रतिदिन पौंचबार भगवान से प्रार्थना करना। इसको सलात भी कहते हैं।
3. रोजा खाना — रमजान के महीने भर केवल एक शाम खाना और वह भी सूर्योदय के बाद। पहले पहल कुरान रमजान के महीने में उतरा था इसलिए रोजा इसी महीने रखते हैं।
4. जमात — अपनी वार्षिक आय का चालीसावां हिस्सा दान में देना।
5. हज करना — तीर्थों में जाना।
प्रत्येक मुस्लिम को कुरान के इन नियमों का पालन करना होता है।
अल्लाह की इच्छा के समक्ष अपने आप को पूर्णतया अर्पित कर देने का ही नाम 'इस्लाम' है। इस्लाम संसार में सबसे अधिक अपरिवर्तनीय धर्म है। इस्लाम धर्म में मुहम्मद साहाब को ईश्वर द्वारा भेजे गए अन्तिम पेयमबर के रूप में माना जाता है। इस्लाम धर्म ईश्वर की एकता में विश्वास रखता है। इसके अनुसार सृष्टि का एकमात्र देवता अल्लाह है जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ एवं असीम करुण है।
उसके अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता नहीं है। सभी मनुष्य उसी की सत्तान हैं।
मुस्लिम समाज में सभी प्राणी समान हैं।

भारत में इस्लाम के आगमन के समय 'समाज' जाति भेद एवं अन्य क्रुद्धतियों के कारण छिन्न-मिन्न हो चुका था। ऐसे समय इस्लाम धर्म का आस्था के सरल रूप, सविचारित मत एवं धर्म विधि और समाज संगठन के जनतात्मक सिद्धांतों सहित पदार्पण हुआ।54 जिससे इस्लामी विचारधारा को परालित होने के लिए उपयुक्त वातावरण मिल गया। वैसे भी लोग नये विचारों की तलाश में भी चाहे वे कही से भी प्राप्त हो। सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया में परिवर्तन की दिशा में साहसिक तथा प्रभावशाली प्रेरणा मिली जो शोधित और पीढ़ित लोगों को संगठि प्रदान करके चित्तन के क्षेत्र में नये तत्त्वों और आयामों का मार्ग प्रशास्त कर सकती थी।55

इस्लाम के अनुसार सामाजिक समस्याओं का निर्धारण न्याय के आधार पर होता है। सामाजिक न्याय को लागू करने के लिए इस्लाम ने अपने को केवल नैतिकता की परिधि में आबाद नहीं रखा बल्कि कानून का सहारा भी लिया इस प्रकार इस्लाम ने "राज्य द्वारा सामाजिक और आर्थिक जीवन को नियमित रखने का उद्देश्य प्रस्तुत किया।56 मुस्लिम भारतीय सामाजिक एकता की भावना, एकेश्वरवाद में आस्था, अल्लाह की इच्छा, के प्रति पूर्ण समर्पण, धार्मिक सप्तता तथा एकता और जीवन के प्रति नैतिक दृष्टिकोण जो कि इस्लाम के आधारभूत तत्त्व है हिन्दू समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इन सभी तत्त्वों से
प्रभावित होकर दक्षिण भारत में समाज सुधारकों ने जाति-विशेष तथा
एकत्ववर्धक आन्दोलन प्रारंभ किये। मुस्लिम समाज में सभी को समता का स्तर
प्राप्त था। इसलिए शुद्ध एवम अछूत स्वभाव से इसको स्वीकार कर रहे थे।

मुस्लिम समाज में स्त्री को पद्ध प्रथा के द्वारा पृथक रखा जाता है और
उसे आदमी के समान भी नहीं समझा जाता। "वैधानिक स्थिति के सम्बन्ध में
काजी के समक्ष गवाह होने के लिए मोहम्मद साहब ने स्त्री को आदमी की
योग्यता से आधा माना अर्थात् दो स्त्रियाँ एक आदमी के बराबर हैं। ऐसा कहा
जाता है कि मुहम्मद ने नरक में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ को अधिक संख्या में
देखा। मुस्लिम समाज में सामान्य दृष्टिकोण है कि स्त्रियों पर समान विश्वास न
किया जाय।" मुस्लिम स्त्रियों को धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार है और उनमें
आदमियों की अपेक्षा धार्मिक प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। स्त्रियों की नैतिकता
अपने आदमियों से कही तीन गुना अधिक संदूर्ध होती है।

मध्ययुग में अनेकों सम्राट यादो का उदय हुआ जिन्होंने प्रयास किया कि एक
ईस्वर में आस्था रखने वाले सभी लोगों के मिलने के लिए एक सामान्य आधार
मिल जाया। इस्लाम ने वैष्णव तथा शैव पंथियों में से कुछ को, समाज में न
सही, सभी व्यक्तियों की ईस्वर के समक्ष समता के मान्यता देने के लिए
प्रोत्साहित किया। अतः इस्लाम के प्रभाव ने लोगों को समानता तथा त्रात्तव की
भावनाओं की ओर आकर्षित किया जिसका तात्कालिक लाभ यह हुआ कि
सामाजिक दूरी तथा जातिगत प्रतिबंधों की कठोरता कम हुई।

इस्लाम सम्पूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य चाहता था। उसके सामाजिक
व्यवस्था में सभी मुगुथ सराबर थे केवल वह सभी मुस्लिम धर्म को अपना ले।
"भारत के जाति-मेन ध्रुव धर्म के मुकाबले में इस्लाम की यह बात बड़े
महत्व की थी। इस देश के शूद्रों तथा नीच समझे जाने वाले लोगों के लिए
अपनी स्थिति को ऊंचा बनाने का यह स्वर्ण अवसर था। हिन्दू धर्म का परिवर्तन
कर इस्लाम को स्वीकार कर लेने मात्र से वे शूद्र अथवा अछूत की हीन स्थिति
से ऊंचा उठकर शासक श्रेणी में सम्भित हो सकते थे। अपने आरम्भिक दिनों में इस्लाम क्रांतिकारी धर्म था। वह मनुष्यों को अन्धविश्वासों से बचाकर दार्शनिक उलझानों से दूर रखता था और ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी भी शक्ति के आगे नतमस्तक होने से इन्कार कर देने की शिक्षा देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि जो भी मुसलमान हो जाते थे उन्हें अमीर से अमीर मुसलमान अपना सच्चा धर्म बनाया मानते थे और अपनी वर्षावरी का दर्जा देते थे। इससे उन दिनों में जहां-जहां इस्लाम पहुंचा वहां के समाज में भारी क्रांति मच गयी। मानवेंद्र नाथ राय ने लिखा है कि 'अरबी आक्रमणकारी दौर जहां भी गये जनता ने उन्हें अपना रूढ़क और जाता मानकर उनका स्वागत किया क्योंकि जनता कही रोमन शासकों के ब्रह्मांडाचार से पीड़ित थी कहीं ईरानी तानासाही के जुल्मों से और कहीं ईसाईयत का अन्धविश्वास उसे जकड़े हुए था' ये आक्रमणकारी अरब अपने नवी के क्रांतिकारी उपदेशों में कठरता से विश्वास करते थे, खलीफों के विवेकपूर्ण एवम् व्यावहारिक आदेशों का पालन उनका निर्दिष्ट धर्म था और इन कारणों से पराजित जनता की सहानुभूति और विश्वास उन्हें आसानी से प्राप्त हो जाता था।

इस्लाम का आरम्भ धर्म में हुआ था, किन्तु वह बढ़कर राज्य और सेना संगठन भी बन गया। इस्लामी राज्य, इस्लामी संस्कृति और इस्लामी राष्ट्र सबके साथ धर्म का जोश सिपट गया। पहले तो धर्म के आदेश से ही राज्य की स्थापना हुई। पीछे राज्य की शक्ति वृद्धि से धर्म का भी प्रताप बढ़ने लगा। इस्लामी देशों में धर्मगुरु और राजा एक ही होता था। इस क्रांति धर्म से तलवार की तेजी बढ़ी और तलवार से धर्म का बल बढ़ने लगा।

इस्लाम मनुष्य और भगवान के बीच किसी बीचवान की आवश्यकता में विश्वास नहीं करता। सङ्गीतित्र नमाज में एक इमाम की जरूरत समझी जाती है। किन्तु कोई भी सच्चाई मुसलमान इमाम का काम कर सकता है। पाँच बार नमाज पढ़ने का प्रयोजन यह है कि आदमी बहुत देर तक भगवान से अलग नहीं
रहे। कम से कम पांच बार वह उनकी शरण में पहुंच जाया करे। इस्लाम ने मूलतः जिस ईश्वर की कल्पना की थी, वह प्रतापी और स्वेच्छाचारी था। इस ईश्वर के सामने दलील कोई चीज नहीं थी, न मानवीय न्यायबद्धता का उसके आगे जोर चल सकता था। अल्लाह शब्द का अर्थ ही शक्ति सम्पन्न पुरूष होता है। इस्लाम ने ईश्वर के उन गुणों को प्रधानता दी, जिनसे प्रेम कम भय अधिक हो सकता था। इस्लाम के अनुसार ईश्वर बहुत समीप से देख रहा है और उसकी अवज्ञा का परिणाम भयानक हो सकता है। अतः मनुष्य के लिए ईश्वर की कृपा और इच्छा पर आंखें मूड कर निर्भर रहे। परमात्मा की दया के सामने सम्पूर्ण रूप से झुके रहने का भाव इस्लाम की सबसे बड़ी विशेषता थी।

मुस्लिम समाज में बड़े पैमाने पर दास प्रथा का प्रारम्भ हो गया था। दास अपने मालिक की कृपा पर जीते थे। 'भगोड़े दासों को अन्य सामन्त परिवारों में शरण मिल जाती थी, दासता ग्रहण करने के पश्चात कुछ लोगों की जाति का अन्त हो जाता था, कुछ की जाति सुरक्षित रहती थी। अर्थात् वह नहीं बदलती थी और कुछ नवीन जातियां, दासता तथा अन्तर्विवाह से उत्पन्न हो जाती थी।

इस्लाम ने सामान्य दास का पूर्णतः समर्थन किया। मुस्लिम शासनकाल में परमर्शात्मक साज का ढांचा ज्यों का त्यों बना रहा जिसमें सामान्तों तथा जागीरदारों को उच्च स्थान पर रखा गया। हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था अधिक कठोर तथा गतिशील बन गई। लोग ऐसी सामाजिक स्थिति में घुटन महसूस करने लगे। "कुछे बाले रीति-रिवाज में सन्निहित निर्धन लोगों की स्थिति बड़ी ही चिंताजनक थी।" 61

मध्ययुग में मुस्लिम शासकों द्वारा जनता का दमन जारी रहा। इस्लामिक राज्य का उद्देश्य अविश्वसनीय अथवा नासिक लोगों के विरुद्ध युद्ध लड़ना था ऐसा मुस्लिम न्यायशास्त्र मानते थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि मुस्लिम शासकों में गैर-मुस्लिम लोगों के ऊपर सामाजिक तथा राजनीतिक आधिपत्य की भावना प्रबल हो गई। उनके ऊपर जजिया कर लगा दिया जो न केवल दमनकारी था
बल्कि अविश्वासी लोगों के लिए हीनता तथा दण्ड का सांकेतिक रूप भी था। राजनीतिक क्षेत्र में मुस्लिम शासकों ने 'भारत में आर्थिक और धौलिक सम्पत्ति की धनी साधनों पर नियन्त्रण किया। पुराना हिंदू धर्म शीघ्रता से विघटित हो रहा था, जबकि इस्लाम सुदूर बनता जा रहा था। बहुत रूढ़िवादी ब्राह्मणों ने स्वयं को पुरातन परम्पराओं की रक्षा में लगा दिया। किन्तु वे उस सूरजनालमक प्रवृत्ति को कायम रखने में असफल रहे जो मुस्लिम विजय के पूर्व हिंदू धर्म ने प्रदर्शित की।

मुस्लिम समाज व्यवस्था का केवल एक कार्य था और वह था इस्लाम का प्रचार और प्रसार करना। इस्लाम सामाजिक ब्राह्मण का सिद्धांत था। जाति और छुआछूत जैसे आप्रवासिक बन्धन मुस्लिम समाज में नहीं थे। धार्मिक एकता मुस्लिम समाज के संगठन का प्रभावशाली स्रोत था जिसका हिंदू समाज में निर्दार अभाव था। सभी मुसलमान आध्यात्मिक एकता तथा समता में आबद्द थे जबकि हिंदू विभाजित होकर पतन की ओर अग्रसित थे।

इस्लाम का राजनीतिक क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रभाव एकता की दिशा में पड़ा। मुगलों के समय भारत को जो राजनीतिक एकता प्राप्त हुई, वह अशोक के बाद कभी प्राप्त नहीं हुई। इस्लाम का दूसरा शुभ परिणाम यह हुआ कि सूफी साधुओं और भारतीय साधकों के मिलन से समाज में धर्म की नयी जागृति उत्पन्न हुई जिसके व्याख्याता कबीर, दादू और नानक जैसे सत्ता हुए।

सैद्धांतिक रूप से तो मुस्लिम विचार अति उच्च थे और इन्होंने हिन्दुओं को प्रभावित भी किया परन्तु व्यवहार: निष्पक्ष अध्ययन से यह स्पष्ट होगा कि इस्लाम के अनुयायियों ने ब्राह्मण और शूद्र, आर्थिक और नासिक, दास और मालिक में भेद करने लगे। धनी लोग निर्धारित को शोषण वैसे ही करते रहे। समाज के निम्नस्तरीय शूद्रों एवं अखूदों का उल्टान नहीं हो सका। जाति व्यवस्था तथा वर्ग चेतना ने भी मुस्लिम समाज के समुदायों में अपनी जड़ें जमा ली। मुसलमानों में भी दुरावर एवं पाप फैलने लगा और धर्म की सेना सुखों के
लोभ में फसने लगी। इनका इतना विस्तार हुआ कि खलीफा पद के लिए झगड़े शुरू हो गये और नमाज में छुके हुए नेताओं की गरदनें काटकर हत्यारे लोग नेता बनने लगे। शिया और सुन्नी का जो भेद मुसलमानों में है वह खलीफा के पद के लिए उठे हुए झगड़ों से प्राप्त हुआ है।

संसार के सभी धर्मों में इस्लाम ही ऐसा धर्म है जिसका विश्व केवल व्यक्ति नहीं सारा समाज है अथवा जो व्यक्ति के सभी आचारों का निर्धारण करता है। कुरान में केवल वैश्विक धर्म की ही बातें नहीं हैं बल्कि उसमें मनुष्य-मनुष्य के विविध सम्बन्ध राजनीतिक बल्ताब, न्याय शासन, सेना संगठन, विवाह, तलाक, शान्ति युद्ध, कर्ज सूदखोरी आदि के सम्बन्ध में भी धार्मिक उपदेश हैं। जिसका पालन धार्मिक नियमों के समान ही आवश्यक माना जाता है। उदाहरण के लिए इस्लाम सूदखोरी को घृणित पाप समझता है और एक साथ चार पलियों से अधिक रखने की इजाजत नहीं देता। इसी प्रकार इस्लाम में शराब पीने की सख्त मनाही है।

(घ) भक्तिवाद

भक्तिवाद का उदय कुछ धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में हुआ। इस्लाम की शक्तियों द्वारा हिन्दू समाज और धर्म की रक्षा हेतु लोगों पर कुछ सामाजिक बच्चों को थोपा गया। लड़कियों के प्रति घृणित दृष्टिकोण, निम्न जातियों के प्रति दुर्वहार भाव, सामाजिक तथा सारस्कृतिक धारा से अछूतों तथा शूरुओं का अलगाव, स्त्रियों की दुर्गति सती तथा पदार्पण, आदि ने हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा को बिलकूल नीचे गिरा रखा था। इस स्थिति को समाजसेवियों के लिए किसी ऐसे सिद्धांत की आवश्यकता थी जो सामाजिक प्रदान कर सके। इसकी पूर्वी धर्म आन्दोलन ने की। भक्तों ने सभी धर्मों की मौलिक एकता तथा समस्त मानव प्राणियों की ईश्वर के समक्ष समानता का प्रचार किया, जातिगत व्यवहार और मूर्ति-पूजा की निन्दा की, एकतर्क धर्म को मान्यता दी, पुरोहित वर्ग के प्रमुख का विरोध किया, कर्मकाण्ड तथा कठोर नियमों का विरोध किया, मोक्ष
प्राप्ति के लिए सरल भक्ति, आस्था और नैतिक जीवन पर बल दिया। भक्ति की सभी शिक्षाओं का मूलधार ईश्वर के प्रति प्रेम की सच्ची भावना थी।

रामानन्द (1360–1450) ने वैष्णववादी भक्ति आन्दोलन का संचालन किया। उन्होंने भक्ति आन्दोलन को प्रभावशाली बनाने के लिए उत्तरी भारत में भ्रमण किया। अवतारवाद का सिद्धांत का रामानन्द ने व्यवस्थित रूप प्रस्तुत किया और दो प्रमुख अवतार, राम और कृष्ण के बतलाये। रामानन्द का युक्त राम की उपासना की ओर था, फिर भी उन्होंने कृष्ण को भी उपासना का प्रतीक माना। रक्षमणी को, कृष्ण की उपासना में शक्ति के रूप में स्वीकार किया जिसे कालांतर में राधा के नाम के साथ जोड़ दिया गया। रामानन्द के अनुसार "भक्ति द्वारा कोई भी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"

रामानन्द ने समान रूप से सबको भक्तिवादी झान प्रदान किया, चाहे किसी का धर्म तथा जाति कुछ भी हो, लेकिन भूतकालीन परम्पराओं को पूर्ण रूप से त्यागने के पक्ष में वे नहीं थे। रामानन्द ने शूद्रों के वेद पढ़ने के अधिकार को मान्यता नहीं दी और सामाजिक विषयों के क्षेत्र में, उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह मुस्लिम के ऊपर हिंदू और शूद्रों के ऊपर हिजों की प्रभुत्व भावना का परिवर्तन कर देंगे। रामानन्द ने भी दक्षिण के अन्य आचार्यों के समान सामाजिक समानता के लिए कठिन नहीं थे। भोजन के सम्बन्ध में उन्होंने कठोर पुष्टकता तथा पूर्ण एकाकीपण का आदेश दिया। रामानन्द सामाजिक विद्रोही नहीं थे। मुस्लिम आधिपत्य के कारण उस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों की तथ्याक्षरता जन्मजात प्रभुत्व हिल चुकी थी। इसलिए रामानन्द ने "ईश्वर के समक्ष मनुष्य की समता के विचार को" अत्यधिक महत्व दिया। उन्होंने सभी वर्गों के लोगों को अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार किया और यह घोषित किया कि सच्चा भक्त मात्र समाज सुधारकों से बढ़कर होता है जो स्वतंत्र अथवा मुक्त बन जाता है। रामानन्द ने सामान्य लोगों के लिए भक्ति मार्ग को सुलभ कराया और प्रचार किया कि "जो आदमी अन्य किसी के साथ भोजन करता है,
उसे उसकी जाति नहीं पूछनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति हरि के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है तो वह स्वतः हरि का ही बन जाता है।”

रामानन्द की शिक्षाओं से दो प्रकार के सम्प्रदायों का जन्म हुआ। प्रथम प्रकार के सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व मुख्यतः तुलसीदास (1527–1623) और नाभादास (1585–1662) ने किया। वेदों की सत्ता, ब्राह्मणवाद तथा वर्णश्रम धर्म में इस सम्प्रदाय ने अद्वैत आस्था प्रकट की। नाभाजी डोम जाति के थे जिन्होंने ‘भक्तमाल’ की रचना की। राम और विष्णु के वे सच्चे भक्त थे और उन्होंने भक्ति के राम सम्प्रदाय की लोकप्रियता बढ़ायी। राम, तुलसीदास के लिए भी सर्वांच्छ सत्ता के अवतार थे। तुलसीदास ने मानव रूप में भूमिका के लिए राम की अत्यधिक प्रशंसा की, यथावत स्वयं भगवान राम मानव रूप धारण करना चाहते थे।”

तुलसीदास ने “रुद्रिवादी हिन्दू धर्म के सिद्धांतों तथा व्यवहारों को स्वीकार किया, जाति व्यवस्था को सही माना, ब्राह्मणी प्रभुता को मान्यता दी, मूर्ति पूजा का पक्ष लिया, कर्मकाण्डों पर बल दिया, सिरियों की स्वतंत्रता को हतोत्साहित किया और भक्ति के सिद्धांत का प्रचार किया।”

भक्तवाद के द्वितीय प्रकार का कृष्ण–सम्प्रदाय था जिसका प्रतिनिधित्व जयदेव (बारहवीं शताब्दी), निमाइक (तेहरवीं शताब्दी), वल्लभ (1479–1544) तथा चैतन्य (1485–1533) ने किया। राधा–कृष्ण के भक्त के रूप में जयदेव ने, गीत–गोविन्द की रचना की। जयदेव ने अपने गीत गोविन्द में मानव प्रेम को देवता के साथ समल्पित करने का प्रयास किया है।” निमाइक ने भेदाभेद के सिद्धांत का प्रचार किया। भेद तथा अभेद दोनों ही समान रूप से यथार्थ हैं। निमाइक के अनुसार कोई व्यक्ति वैदिक कर्त्तव्यों के अध्ययन के पश्चात ही, जो विभिन्न प्रकार के लाभदायक फल देते हैं, ब्रह्मचर्यान का अनुसरण कर सकता है। इन कर्त्तव्यों का प्रमुख लक्ष्य मन की सुद्धि करना है ताकि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग सुलभ हो सके। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात भी, जीवन के विभिन्न आश्रयों के कर्त्तव्यों का अनुपालन करना अनिवार्य है।”

कृष्ण–भक्ति की परस्पर में वल्लभ
भी आते हैं। कृष्ण को उन्होंने भी भ्रम-रूप माना। केवल भक्ति से ही आदर ब्रह्म को मोक्ष प्राप्त हो सकता है वल्मी ने ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा भक्ति-मार्ग को पसंद किया।७७ उनके प्रमुख शिष्यों में सूरदास (1483-1563) तथा मीराबाई (1498-1573) थे जिन्होंने कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाया।

कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय में चैतन्य (1485-1533) का नाम भी अतिप्रसिद्ध है। उनका भक्तिवाद कृष्ण के प्रति भक्ति के रहस्यवाद में समाहित है। चैतन्य ने कीर्तन-प्रणाली की शुरुआत की जिसमें उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम से सम्बन्धित भक्तियुक्त गीतों को गाया। "उन्होंने ब्राह्मणों की कर्मकाण्डी व्यवस्था की निन्दा की और कृष्ण के प्रति अटूट विश्वास का प्रवार किया। उनके अनुसार हरी से प्रेम एवम् भक्ति ही मोक्ष का मार्ग है। वे जाति प्रथा के आलोचक थे उनके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं।"७८

चैतन्य भक्तिवाद की प्रमुख विशेषता अनुराग और क्रीड़ा है। उनके अनुसार प्रेम जगत को नियमित बनाने का सार्थक सिद्धान्त है। उन्होंने ब्राह्मणों एवम् शूद्रों में भेदभाव नहीं माना और अपने अनुयायियों को चाण्डालों के बीच प्रेम की ज्योति का प्रकाश फैलाने को कहा। "चैतन्य ने जातिविहीन समाज के आदर्श और कर्मकाण्ड से स्वतंत्र पूजा को प्रोत्साहन दिया और नग्रदथ सहिष्णुता तथा आत्मसमर्पण पर बल देकर बहुत से बच्चों का अन्न किया। जिससे मानव चरित्र के निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।"७९

विद्यापति (1368-1475) राधा कृष्ण के भक्त थे परन्तु वे धार्मिक भावनावाद को स्वीकार नहीं करते थे।८० जे सुख (1550-1605) कृष्ण भक्त थे, वे कृष्ण के रूप में भ्रम को मानते थे जिनकी दया से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। "सुख अवतारों को मानते थे, जो समान प्रकाश के होते हैं।" सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास, नन्ददास तथा रसखान आदि समन कवि थे जिन्होंने कृष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाया।"
अद्वैत शास्त्री तक कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय लोकप्रियता के शिखर पर
चढ़ाता गया। भक्त बलदेव (1725–1775) के लिए कृष्ण, विष्णु अथवा हरि, ब्रह्म
का ही रूप है। ब्रह्म समुपर्व और निर्गुण दोनों हैं। बलदेव के अनुसार कृष्ण ब्रह्म
का पूर्ण अवतार है और उनकी वृद्धि में राधाकृष्ण का मिलन “ईश्वर और आदमी
की मूल एकता” का प्रतीक है। वर्ण-श्राम व्यवस्था द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का
अनुपालन करने से आदमी का मन शुद्ध होता है और उसे मोक्ष के समीप ले
जाता है। परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता है। बलदेव मोक्ष के लिए ज्ञान
को पर्याप्त मानते हैं परन्तु इसके लिए ईश्वरीय कृपा अनिवार्य है। ईश्वर केवल
उन्हें को मोक्ष के लिए चुनता है जो उसके सच्चे भक्त होते हैं। ईश्वर कृपा से
ही उसकी अनुमूल्यता प्राप्त हो जाती है।

भक्तिवाद अपने आप को वैष्णववाद की परम्पराओं से मुक्त नहीं कर पाया।
रामानन्द द्वारा प्रारम्भ किये गये आन्दोलन में भक्तों की एक लम्बी श्रृंखला
निरन्तर बनी रही। उनमें प्रमुख नाम कबीर का आता है। कबीर ने परम्परावाद,
कर्मकाण्ड तथा सामाजिक नियतिवाद की कड़ी आलोचना की और मनुष्यों को
किसी दूसरे जगत की अपेक्षा इस जगत से समर्पित समस्या के बारे में विचार
करने को कबीर शास्त्रों की अपेक्षा अनुवादयुक्त ज्ञान में अधिक विश्वास रखते थे।
कबीर ने जो चिंतन समाज द्वारा स्वीकार्य था, उसी की खोज एवम समन किया
और उसी के आधार पर व्यवस्था करनी चाही।

कबीर के समकालीन रविदास (1407–1527) श्री रामानन्द के शिष्य थे।
रविदास जाति से चमार, निर्गुणवादी भक्त, राम के पुजारी थे। उनकी प्रमुख
शिष्याओं में विठ्ठर की रानी झाली और कृष्णभक्त मीराबाई थी। उनके दोहों में
मानवता की झलक दिखती है, वे अवतारों का नहीं मानते, जगत को ईश्वर का
क्रियाशाल माना और ईश्वर के प्रति पूर्ण–समर्पण पर बल दिया। उनका मूल
सिद्धांत था कि हरी (ईश्वर) सबमें है और सब हरि में है। रविदास ने समस्त
मानव प्राणियों की मूल समता एवम स्वतंत्रता का समर्थन किया ताकि सामाजिक
सम्बन्धों में ऊँच–नीच का भाव न रहे। रविदास की योग, यज्ञ, कर्मकाण्ड, बुद्धि, 
धार्मिक संकेत, तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, जाति–मेधाव आदि में कोई रूढ़ि नहीं थी।86 

विष्णु भक्त, धन्या आध्यात्मिक समानता के प्रचारक थे। सदना जो एक 
कसाई का काम करते थे। विष्णुभक्त एवम् रामानन्द के शिष्य थे। वह विष्णु 
भक्त थे किंतु सालिगराम से मांस तौलकर दिया करते थे। हर्यानन्द और सेना 
रामानन्द के अनुयायी थे। उन्होंने वैष्णव भक्तिवाद को लोकप्रिय बनाया। 
सूरदास भी विष्णु के उपासक थे। जिन्होंने अपनी कविताओं में कृष्ण को आधार 
बनाया।

दादू (1544–1603) भक्तिवाद की निर्गुण परम्परा के महान संत हैं। वे 
अपनी सरलता और शान्त–चित्त के कारण बड़े लोकप्रिय थे। दादू का समय 
समयवर्धी युग था जब संतों ने हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों की सीमाओं से 
आगे बढ़ने का प्रयास किया। दादू साहब कबीर पंजी थे एवें राम सम्राट में 
उनका अद्वैत विश्वास था। उनकी भक्ति आस्था जप तक सीमित थी। उनकी 
भक्ति का मूलाधार राम नाम बार–बार समर्पण करना था। उनका दृढ़ विश्वास 
था जो कुछ राम की इच्छा होनी, वही होगा।87 उन्हें कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, 
तीर्थयात्रा, पण्डिताई आदि पसंद नहीं थी। सुन्दरदास दादू के परम शिष्य थे। 
सुन्दरदास का योग और अनेक वेदान्त में अद्वैत विश्वास था। भक्ति की पूर्णता 
के लिए वे आत्म–संयम हेतु पंचिन्द्रियों के नियंत्रण पर बल देते थे।88 

रामानन्दी कबीर भक्तिवाद की परम्परा में धर्मदास (1550–1665) तथा 
धर्मदास (1575–1686) के नाम भी उल्लेखनीय हैं। वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक 
थे। मलूकदास (1574–1682) भी इसी परम्परा में आते हैं। उनके अनुसार राम 
सभी चीजों का दाता है। वही उपास्य है। राम की पूजा में मलूकदास मौनगृहीत 
के समर्थक थे।89 उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमानों को धार्मिक एकता के सूत्र में 
बांधने का प्रयास किया इनकी वाद गरीबदास (1717–1795) आते हैं जिन्होंने 
कबीर के जीवन दर्शन को पूर्णता स्वीकार किया। वह किसी प्रकार का आलिगत
या धर्मगत भेदभाव नहीं मानते थे। चरनदास (1703–1783) भी वैष्णव सन्न्यास के रघुनाथ मानते थे। उन्होंने भी कृष्ण को ब्रह्म के रूप में समस्त सत्ता का मूलाधार माना।

भक्तिवाद की कबीर परम्परा में, दयाला साहिब (1734–1780) का नाम भी प्रमुख है। वे अपने आपको कबीर का अतीतार मानते थे एवं उन्होंने कबीर की सभी शिष्यों का पूर्णतः पालन किया। उन्होंने अपने सम्राट में हिन्दू-मुस्लिम दोनों को समान रूप से प्रेम दिया ताकि सामाजिक सन्तुलन बना रहे। उनका सामाजिक दृष्टिकोण समन्वय तथा सहयोग पर आधारित था।

महाराष्ट्र में भी भक्ति आन्दोलन अत्यन्त लोकप्रिय था। यहाँ प्रमुख सन्त ज्ञानेश्वर ने इसे प्रचार किया। उन्होंने अपने शिष्यों के लिए उच्च आत्मात्मिक आन्दोलनों की प्रतिष्ठा की। सन्त ज्ञानेश्वर के लिए जगत माया की अभिव्यक्ति नहीं वरन् जहाँ उन सबके लिए जो इसमें उच्च दिव्यानन्द तथा प्रेम की अभिव्यक्ति है। नामदेव (1270–1350) दर्शन का काम करते थे वे "धर्म के वाद्य आदर्शों को निर्धारण नहीं मानते थे। नामदेव ने रंगों से जातिबन्धों को लोड़ने तथा धार्मिक अनुभव प्राप्त करने को त्यागने के लिए कहा। उनके अनुसार मोक्ष भक्ति एवं ईश्वर के प्रेम से प्राप्त की जा सकती है। उनकी विचार (भगवान विष्णु) के प्रति भक्ति ने उन्हें कुछ चमत्कारिक शक्ति प्रदान की।

नामदेव आवागमन के सिद्धांत को मानते थे क्योंकि उनके अनुसार गत जीवन के कर्मों के प्रतिफल कभी नहीं मिलते। इन सत्तवक्टियों ने धार्मिक पुनर्जागृति तथा उदारवादी सामाजिक आन्दोलन को बढ़ाया दिया जिससे सर्वधर्म हिन्दू धर्म की लहर की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

महाराष्ट्र के ही एक अन्य सन्त एकनाथ (1548–1598) थे जो त्यागवाद और संविधानवादको नहीं मानते थे। उन्होंने यह प्रचार किया कि भक्ति के द्वारा गृहस्थियों, स्त्रियों, अछूतों तथा शूद्रों को मोक्ष प्राप्त हो सकती है। इसी परम्परा के एक छोटी जाति से सम्राट रहने वाले सन्त तुकाराम की अवधारणा इसी प्रदर्शनी से उनके प्रसिद्धि से व्यक्त
कबीर के युग में नाथयोगी सम्राट का बहुत प्रचार था जिसके आदि प्रवर्तक 'आदिनाथ' शिव माने जाते हैं। परन्तु इसको प्रसारित करने में गोरखनाथ का नाम विख्यात है। उन्होंने योग—सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाया और यह शिक्षा दी कि शुद्ध मानसिक एकाग्रता नीचतम जाति बाले व्यक्ति के शरीर को पारस्तौकिक तथा अतीन्द्रिय बना देती है धीरे-धीरे उसकी आत्मा परमात्मा के साथ तात्त्विक स्थापित कर लेती है। गोरखनाथ शिव को अपना ईश्वर मानते हैं उनकी कृपा से सभी जाति के मनुष्यों को आनन्द प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक गोरखपंथी के लिए कान छेदना अनिवार्य था इसीलिए उन्होंने 'कानफुटयोगियों' के नाम से पुकारा जाता है।

गोरखनाथ के अतिरिक्त और भी संत नाथ—गुरु—परम्परा में हुए जिनमें जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ, पृथ्वीनाथ, मुकुंदनाथ आदि प्रसिद्ध हैं। इन सभी का विश्वास है कि चित्तमृतियों के पूर्ण निरोध के परमात्मा ही आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसीलिए उन्होंने योग साधना का उपदेश दिया। वे मन की शुद्धि पर बल देते थे।
इसी काल में एक अन्य धार्मिक सम्राट निरंजन सम्राट विद्यामान था जिसका मूल स्रोत नाथ-पंथ समझा जाता है। इसके प्रवर्तक स्वामी निरंजन (निर्मुण) के उपासक थे। उनके अनुयायी राजस्थान में अब भी मिलते हैं।

कबीर के समय में रसेश्वर सम्राट भी प्रचलित था। जनुश्रुति है कि इसका मूल उपदेश आदिनाथ महादेव ने दिया था और आदिनाथ, चन्द्रसेन, नित्यानन्द, गोक्षनाथ, कपालि, माण्डल आदियोगियों ने योगबल से इसकी स्थापना की थी। यह सम्राट रसायनवाद के विचार पर आधारित है। इनके अनुसार मुक्ति के लिए दिव्यदेह आवश्यक है। रस ही शरीर को अजर-अमर बनाता है। इस रस के स्पर्श, दर्शन, भक्षण, स्मरण, पूजन, दास से ग्रहिता फल प्राप्त होते हैं। रस ही ईवर है। कबीर ने भी 'रस' अथवा रसायन को 'रम-रस', हरि-रस अथवा रम रसायन नाम से अमितिय किया है।

भक्तिवाद की सन्तपरम्परा में सत्तरस्वी शातावरी में भक्तों की एक और श्रंखला है जिसमें बीर्मान, लालदास, बाबालाल, हरीदास, शिवराम, हरीरामपुरी, सथरा, आदि नाम प्रमुख हैं। इन सभी ने एक ही ईवर के सिद्धान्त का प्रसार किया जिससे विभिन्न समुदायों में मानव एकता का भाव उत्पन्न हो सके। भक्ति आन्दोलन ने “जिसमें आधिकारिक: निम्न जातियों तथा निर्धारित समुदायों के लोग थे, कर्मकाण्डवाद तथा जातिवाद की अपेक्षा, ईवर-अनुरोध के द्वारा धर्म का महत्वपूर्ण पक्षमान कर गम्भीर बनाया तथा दूर-दूर तक उसका प्रचार किया।”

भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने ध्यान एवम् मन का अध्यास किया। उनके जीवन का ध्येय ही ईवर में लीन हो जाना था। उन लोगों ने नशीली वस्तुओं एवम् मांसाहार का त्याग किया, एक के द्वारा दूसरे के दमन का विरोध किया। उन्होंने सब धर्मों की मौलिक एकता तथा ईवरत्व की एकता का प्रचार किया, वे लोगों की मान्यता की कि आदमी की महानता उसके कर्मों पर निर्भर होती है, न की जन्म पर उन्होंने अत्यधिक कर्मकाण्ड, पुरूषों के प्रभुत्व का विरोध किया,
और सब के लिए मोक्ष के साधन के रूप में सरल भक्ति तथा आस्था पर बल दिया।

अदालहबी शताब्दी में जगजीवन दास ने सन्त कबीर की शिक्षाओं का अनुपालन किया एवं बीमारान के सत्नामी सम्प्रदाय को स्वीकार किया। बुल्ला साहेब की योग दर्शन में बड़ी उद्भि थी क्योंकि इससे ईश्वर-भक्ति के लिए मन की शान्ति प्राप्त होती है। केशवदास सब प्रकार के धम्मण के परिप्रेक्ष्य के पश्चात थे क्योंकि इससे समय का भाव उत्पन्न होता है। साथ ही लोगों से धन से अधिक मोह नहीं रखने को कहा क्योंकि धम्मण और धन दोनों ही मन की शान्ति को भंग करते हैं। केशवदास ईश्वर के नाम को सबसे बड़ा धन मानते थे। सन्त्रामचरण ने राम संही सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्होंने मूर्तिपूजा, जातिवाद, कर्मकांड का विरोध किया। नैतिक संयम पर अवधिक बल दिया। प्राणनाथ के अनुसार प्रेम ही समस्त मानव एवं दैविक अस्तित्व का मूलाधार हैं। सभी मानवों को एकता के सूत्र में पिरोटिन के लिए प्राणनाथ ने सर्वधर्म समन्वयवाद का प्रचार किया। मानव कल्याण इस बात पर निहित है कि सब धर्मों में से एक विश्व धर्म का विकास किया जाये।

अदालहबी तथा उन्नीसवीं शताब्दी में गुमरू सन्तों के नाम इस प्रकार हैं—
सहजांतर (1780–1852) ये स्वामी नारायण सम्प्रदाय के जन्मदाता थे, जगजीवनदास के परम शिष्य दुलनदास (1717–1835) गुलाल (1750–1850), भीखा (1777–1827), पल्लुदास (1757–1825) राज्जेब (1624–1740), हाथरस के दुलसी साहेब (1760–1842) जिन्होंने जाति वाद का कःः प्रवेश किया। इन सभी सन्तों की ईश्वर–कृपा पर बड़ा विश्वास था सभी ने जातिगत भेदभाव एवं छुआछूत की निन्दा की व कर्मकांड का विरोध किया।

भक्तिवाद की सन्त–परम्परा में चोखमेला का नाम भी प्रमुख है, जो महार जाति के एवं ईश्वर भक्त थे। उनके अनुसार "चाहे कोई आदमी नीची जाति का हो, यदि वह ह्याद से आस्थावान है, ईश्वर को प्रेम करता है, सब प्राणियों
का आदर करता है, सत्य बोलता है तो उसकी जाति गुरुद्वारा और उससे ईश्वर अति प्रसन्न रहता है। यदि कोई व्यक्ति अपने हृदय में ईश्वर के प्रति आश्चर्य रखता है और सब प्राणियों से प्रेम करता है, तो उसकी जाति नहीं पूर्णी चाहिए। ईश्वर अपने बच्चों में प्रेम और भक्ति की भावना चाहता है, ईश्वर के लिए जाति कोई साधन नहीं रखती है।

भक्ति आन्दोलन के माध्यम से संतों ने लोगों के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का विकास किया, देश के सामाजिक, सांस्कृतिक विकास में भी भारी योगदान दिया। मूर्तिपूजा, जाति व्यवस्था, कर्मकाण्ड का विवेक किया, ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया। लोकप्रिय भाषा में गायन, नृत्य के द्वारा हिन्दू संगठन बनाने का प्रयास किया। भक्ति आन्दोलन इस्लाम के एकेश्वरवाद एवम् समतावाद के संदर्भ में हिन्दू धर्म की नयी व्याख्या थी लेकिन भक्ति आन्दोलन का धार्मिक सिद्धांत भगवदगीता का सिद्धांत था जिससे सभी को ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण के लिए बद्ध किया, इसका उस समय की परिस्थितियों में बड़ा महत्व था।

मध्यकालीन भक्तों ने "मूर्तिपूजा, जाति तथा धर्म की क़ृति और कर्मकाण्ड की यांत्रिकता के प्रति विद्रोह किया। उन्होंने हिन्दू तथा मुसलम समुदायों के बीच खाई को पाटा और उन्हें आश्चर्य, जीवन एवम् कर्म में एक बनाया। उन्होंने अपने अनुयायियों में पदार्थ-प्रथा समाप्त की और स्त्रियों के आत्म-प्रकाश के अवधारों को मान्यता दी।" भक्ति आन्दोलन का सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैला था इसका निर्देश प्रसार एवम् प्रचार हो रहा था। इस आन्दोलन ने मुख्यता जाति व्यवहार का कदा विरोध एवम् स्त्रियों की स्थिति को सुधारा परंतु इतना सब के बाद भी भारत की सामाजिक प्रक्रिया मानवीय सम्बन्ध के संदर्भ में निम्न स्तर पर क्यों बनी रही? भारत में स्त्री-पुरुषों की सामाजिक स्थिति उल्लंघित एवम् उत्पीडित क्यों बनी रही?
इसका कारण यही है कि भक्ति आन्दोलन ने समानता का प्रचार केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में किया, भौतिक जगत में नहीं। भक्ति आन्दोलन सामाजिक क्रांति के पक्ष में नहीं था। सन्त लोगों के विभिन्न दुःखों के लिए काल, कर्म, जन्म आदि को उत्तरदायी मानने लगे। वे यह नहीं समझ सके कि सामाजिक एवम् आर्थिक परिस्थितियाँ लोगों की दुरगति तथा दुर्दशा के लिए उत्तरदायी हैं। सन्त भक्त ईश्वर के समक्ष मानव समानता का प्रचार करते रहे और मानव प्राणियों को आध्यात्मिक दृष्टि से समान बताने में ही लगे रहे। यही उनकी असफलता का प्रमुख कारण था।

द्वितीय कारण कि भक्ति आन्दोलन ने कुछ सामाजिक व्यवहारों तथा रीतिरिवाजों की कठी आलोचना की किन्तु उन्होंने भारतीय समाज के सामाजिक और आर्थिक पुर्वगठन की कोई वैकल्पिक योजना प्रस्तुत नहीं की। उनका निवेदन बौद्धिक की अपेक्षा भावनात्मक अधिक था। वे सभी लोगों की समानता की प्रामाणिकता के लिए बौद्धिक सिद्धांतों के आधार पर तर्क नहीं दे पाये। 102

भक्ति आन्दोलन के असफल होने का तीसरा कारण कि उसने कभी कोई संगठन तैयार एवम् स्थापित नहीं किया सभी अपनी-अपनी कहते हैं, ये सब मिलकर जन-समुदाय की चेताना एवम् जागृति के लिए कोई योजना नहीं बना सके। इन सभी लोगों ने सामाजिक कुशलताओं का विरोध व्यक्तिगत रूप में किया न कि सामूहिक रूप से। सन्तों के धार्मिक विचारों में विद्यमान मतभेद और देश के विभिन्न भागों में सामाजिक प्रकृतियों के साथ सम्बन्धित व्यक्तिगत प्रेरक भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत विभिन्न दिशाओं में बंट गये। 103 अर्थात् सन्तों के बीच सामूहिक शक्ति की कमी रही। सन्तों की असफलता का चतुर्थ कारण महाराष्ट्र आन्दोलनों से समस्यित माना जा सकता है। महाराष्ट्र के अधिकांश सन्तों में सिद्धांतों की दृष्टि में कमी तथा विरोध की सहन शक्ति अधिक थी जिसके फलस्वरूप वे व्यवहारत: विद्योह एवम् परिवर्तन के प्रभावशाली साधन नहीं बन सके। “अर्थात् भक्ति आन्दोलनों के सन्तों की प्रकृति शान्त थी जिन्हें मतभेद
अथवा आपस की अंदता पसन्द नहीं थी, शाहता प्रेमी होने के नाते, महाराज्य के भक्ति सम्रादय के सन्त सदैव विरोधी व्यवस्थाओं के समन्वय के इच्छुक रहे हैं, उनका सिद्धांत समन्वयवाद का सिद्धांत था।

पंचम कारण यह था कि "भक्ति सम्रादय ने उस समय मौजूद व्यवस्था के प्रति न तो कोई विरोध किया और न ही उसे नष्ट करने का कोई लक्ष्य बनाया। भूतकाल में सभी आन्दोलनों की यह विशेषता रही है, विशेष रूप से महादा आन्दोलनों की। उन्होंने त्याग की अपेक्षा अपने में ही अधिकांश अन्य बातों को मिलाया। समिश्रण के द्वारा उन्होंने विरोध एवम् प्रतिद्वंदिता को निशान बना दिया।"

सामाजिक एकता की भावना में सन्तों के असाम्य होने का एक कारण यह था कि उन्होंने कभी हिन्दू समाज को सुधारने पर कोई विशेष बल नहीं दिया। उन सभी सन्तों की रुचि धर्म में ग्रीष्म थी जिससे वे इसी में व्यस्त रहे। सन्त "मनुष्यों को पुरोहितों से तथा आर्वकी पूजा एवम् अनेकश्रेणीययों से मुक्त करना चाहते थे।" उन्होंने सन्तुष्ट शान्तवादियों की संस्थाओं का निर्माण किया, अथवा इन लोगों ने अपने अनुयायियों से सामाजिक और धार्मिक बल चन को दोहें फंकने को और युग में वर्तमान ब्राह्मणवाद से मुक्त नये लोगों का निर्माण करने की अपेक्षा वे भविष्य के विविध में ही व्यस्त रहे जिससे कि मुक्ति अथवा विद्यान्द की प्राप्ति हो सके।

अष्टम कारण यह था कि भक्तों की प्रसिद्धि उनकी समाज में पकड़ अथवा शक्ति को बढ़ात ही अधिक आकांक्षा जब कि ऐसा था नहीं, अगर ऐसा नहीं था तो "उन के सिद्धांत गूढ़ क्यों बन गये एवम् उनके सम्रादय हिन्दू धर्म में विशेष क्यों हो गये? कारण यह हो सकता है कि वह रहस्यवादी क्रांति भारतीय अर्थव्यवस्था में मौलिक परिवर्तन के अभाव में, आदर्श क्रांति बनने के लिए ही आबद्ध थी।" भारतीय समाज में स्थायी परिवर्तन धर्म से नहीं आ
सकता। भक्तों ने मौलिक समाज परिवर्तन के उत्तरदायित्व को कभी स्वीकार नहीं किया। वे अधिकतर रहस्यात्मक विचारों एवं खोजों में व्यस्त रहे।

भक्ति आन्दोलन की प्रमुख शिक्षा यह थी कि जगत में आदमी का प्रमुख कार्य केंद्रीय जगत की उपेक्षा करना, सामाजिक आवृत्ति से परे होना, कर्म एवं भाग्य पर विश्वास और एक सन्यासी जीवन का पालन करना। भक्ति आन्दोलन ने पतलावनवाद को बढ़ावा दिया। अर्थात सबकुछ ल्याग कर ईश्वर की शरण में चले जाओं। जब सामाज्य आदमी को इस दुनिया से कुछ प्राप्त नहीं होता है तब वह स्वर्ग में जाने की सोचता है।108 इस प्रकार भक्ति आन्दोलन पन्द्रहवीं शताब्दी का "पतलाव और वस्तुः सांसारिक निराशावाद का नया धर्म" बनकर प्रकट हुआ।109

सामाजिक क्षेत्र में भक्ति आन्दोलन के असफल होने का कारण यह था कि भक्ति आन्दोलन ने अछूतों, शूद्रों के लिए धर्म के द्वार खोले लेकिन अन्य बातों के लिए उनकी दशा वहीं की वहीं रही। अछूत अब भी अछूत हैं। यह सत्य है कि वे आध्यात्मिक बातों को ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु उनका जन्म अब भी बहुत बड़ा बाधक है। इस बच्चन को कोई भी हिन्दू तोड़ नहीं सकता।110 शैववाद, वैष्णववाद, भक्तिवाद सभी ने जाति व्यवस्था का विरोध किया। किन्तु आज वह सब मौजूद है जिनका उन्होंने शुरू में विरोध किया। रामानुज "अछूत वर्ग की आध्यात्मिक सामाजिक संचार से बहुत प्रभावित थे। किन्तु कभी उन्होंने सामाजिक स्थिति परिवर्तन की कोई योजना नहीं दी।"111 रामानुज जो कि रामानुज के अनुयायी और समस्त भक्ति आन्दोलन के पीछे एक शक्ति थे। "जाति व्यवस्था को तोड़ने का प्रस्ताव नहीं रखा। वे सम्प्रदाय जो रामानुज से प्रेरित थे, अन्य हिन्दुओं की ही भांति जाति में विश्वास रखते हैं।"112 यह सन्तों की असफलता का दशाम् कारण है।

जाति व्यवस्था का तो सभी सन्तों ने विरोध किया परंतु सिद्धांतों की स्थिति के मामले में "महान भक्त लोग उत्तरने स्पष्ट एवम् एक नहीं थे जैसे उनका
विचार जाति के बारे में था। स्त्रियों का पुरुषों के पतन का कारण माना गया उन्हें मोहिनी की निकृष्ट श्रेणी में रखा गया जिनसे पुरुषों को अपनी रक्षा करनी चाहिए। फिर भी सामान्यतः भक्तवादी सन्तों ने स्त्रियों को अपने शिशुओं की मुख्यारा में रखा, आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्रियों को प्राप्त पुरुषों के समान ही मान्यता दी गई।"¹³ बौद्धिक स्तर पर उनका उत्तरा नहीं मिला। उन्हें पुरुषों की रेखा ही करने को कहा गया, भले ही उनके पति कैसे भी हीं इसी के द्वारा वे अपना आगामी जीवन सुखमय बना सकती है। स्त्रियों को बस्तुतः मौक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधक माना जाता है। स्त्रियों के प्रति ऐसा कृप्तिकोण लोगों की सामाजिक स्थिति में मौलिक परिवर्तन न ला पाने में भक्ति आन्दोलन की असफलता का एकादश कारण बना।

परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सन्तों ने भारत की सामाजिक प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं दिया। उनका प्रमुख कार्य धार्मिक सहिष्णुता, साम्राज्यवादी एकता, ईश्वरवादी अध्यात्मवाद, त्याग, मानववाद, रहस्यवाद, सामाजिक भाईचारा, समन्वयवाद आदि को प्रोत्साहित करके और साथ में जातिवाद, कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास, छुआछूत, दमन, सामाजिक, अलगाव, भोगविलास आदि की निन्दा करके विभिन्न समुदायों में भावनात्मक एकता स्थापित करना था। सन्तों ने मनुष्य को ईश्वर का ही स्वरूप समझा। सभी मानव प्राणी एक है। ईश्वर के समक्ष सब मानव प्राणियों की समानता, सन्तों के समाज दर्शन की मूल विशेषता थी। अनेक निम्न जाति से समबयित सन्तों ने यह सिद्ध कर दिया कि निम्नजाति के स्त्री-पुरुष भी अध्यात्मिक क्षेत्र के शिखर तक पहुँच सकते हैं। छुआछूत जो कि समाज के लिए एक अभिशाप है सन्तों को स्वीकार नहीं था। निष्कर्ष: कहाँ जा सकता है "भक्ति आन्दोलन का मूल प्रभाव समानता के लिए भारी प्रयाल करना और उच्च जातियों को इस जन सामुदायिक प्रहार के लिए तैयार करना था जो ब्रिटिश शासनकाल में प्रकट हुआ।"¹⁴
जातिवाद से पीड़ित हिन्दू समाज को सुधारने की आवश्यकता तो वैष्णव सन्त महसूस करते थे परन्तु वे वर्तमान समाज व्यवस्था को नवीन रूप देने के लिए कोई ठोस पहल नहीं कर पाये। 'मध्ययुग में कुछ सन्तों ने वर्तमान समाज एवम् सामाजिक मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन की मांग की'15 उनमें प्रमुख कबीर एवम् नानक थे। कबीर ने इस बात का समर्थन किया कि ईश्वर का ज्ञान किसी जाति पर आधारित नहीं होता। अतः उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितों के नियमों को मानने से इनकार कर दिया।16

कबीर साहब ने भारत की सामाजिक प्रक्रिया के विकास में उल्लेखनीय योग दिया। वे रामनन्दी सन्त भक्ति परम्परा के थे। उनकी शिक्षाओं ने लोगों को बढ़ा आकर्षित किया क्योंकि वे उनके जीवन में व्याप्त थी। उनकी शिक्षाओं में जहाँ 'एक और मुस्लिम ईश्वरवाद की कठोरता और व्यक्तिव्यक्ति नवानता का परिचालन है' वही दूसरी ओर हिन्दू पुरोहितवाद, बहुदेववाद तथा जातिवाद के प्रति कड़ा विरोध दिखाई देता है ताकि दोनों समुदायों में सहयोग की भावना का प्रसार हो।17

कबीर साहब ने समन्यवादी दृष्टिकोण अपनाया क्योंकि उन्होंने हिन्दू धर्म व इस्लाम के बीच संघर्ष को महसूस किया किया। खुद हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में मलबेद था। 'व्यावहारिक सुधारक के रूप में कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भारी प्रयाल किया।'18 कबीर साहब ने अपने आप को न तो इस्लाम से न ही हिन्दू धर्म से जोड़ा और न उनकी किसी नये धर्म की उत्पत्ति की कोई इच्छा थी। उन्होंने केवल ईश्वर के प्रति प्रेरण मय भक्ति को, जो सबका सच्चिदानंद एवम् पालनकर्ता है लोकप्रिय बनाया।19 कबीर ने भक्ति पर बल दिया जो कि भावनात्मक एवम् विशुद्ध होनी चाहिए। दिव्यानन्द की खोज स्वतः अपने अन्दर होनी चाहिए, क्योंकि मानव ज्ञान ही ईश्वर का सच्चा निवास-स्थान है।

'कबीर में, रामनन्दी गोरपंडी तथा सूक्ष्म परम्पराओं का प्रभाव है जिससे उनमें एक सहनशील, सर्वधर्म संग्रह एवम् गम्भीर भावना का विकास हुआ, जिससे सभी
संस्थागत धर्म को एक खोखला प्रदर्शन माना, दृढ़तापूर्वक जातिवाद सम्प्रदायवाद,
तप तथा कर्मकांड की निन्दा की और सत्य को प्रत्यक्ष रहस्यात्मक अनुभूति के
द्वारा प्राप्ति का प्रयत्न किया।१२० कबीर के समय में सभी क्षेत्रों में कलह और
पारस्परिक संघर्ष विद्यमान था।

कबीर ने रामानन्द की शिक्षाओं से चेतना ग्रहण कर आध्यात्मिक जीवन में
प्रवेश किया। जातिवाद, मूर्तिवाद, तीर्थ-यात्रा, तपस्या और धार्मिक जीवन के
वाह्य संकेत सभी का पूर्वार्थ उन्होंने परित्याग किया और विभिन्न अन्य विविधताओं
की जड़ों पर कहा प्रहार किया।१२१ कबीर साहब ने प्रयत्न किया कि प्रत्येक
व्यक्ति में आत्मचेतना का विकास उस सीमा तक हो जाये कि वह स्वयं अर्थातः
एवम् रूढ़ि से प्रस्त व्यक्तियों का विशेष निश्चित न होकर एवम् उन परम्पराओं एवम्
शीतिसियों को बदल सके जो मानववादी सामाजिक सम्बन्धों की प्रगति में
बाधक है। जाति व्यवस्था के विनाश के लिए कबीर दृढ़ प्रतिज्ञा थे। वे इसे
अन्यायपूर्ण तथा अमानुषिक माना और खुलकर इसका विशेष निष्ठुर किया जो इससे
पहले किसी हिन्दू सुधारक ने नहीं किया। “उन्होंने अन्य जातियों के साथ, शूद्रों
की पूर्ण समानता की मांग की।१२२

कबीर का समाज परिवर्तन का सिद्धांत जनतात्मिक है जो कि मानववाद
तथा आध्यात्मवाद पर आधारित है। यह सिद्धांत जनम तथा पैतृकता को जीवन के
मूल्यांकन का आधार नहीं मानता है। जो धर्म संकीर्णता से मुक्त और समता पर
आधारित है वही सच्चा धर्म है। कबीर का सन्देश मानव प्रेम का प्रसार करना था
जिससे विभिन्न जातियों एवम् धर्मों के लोगों में एकता की भावना बढ़े। उन्होंने
परम्पराओं एवम् उन मूल्यों का विशेष किया जो सामाजिक एवम् आध्यात्मिक
कल्याण के लिए निर्धारित है। उनके अनुसार ऐसे मूल्यों एवम् परम्पराओं को
केवल प्राचीनता के आधार पर बनाये रखना कोई बुद्धिमानी नहीं है। “कबीर के
अनुसार प्राचीनता सत्य की कसौटी है ऐसा सही नहीं है वे अच्छी तरह परीक्षा के
बाद ही सत्य को स्वीकार करते थे।१२३ कबीर की प्रेरणा का स्रोत वर्तमान समाज
था। वे समाज से ही सीखते एवम् समाज को ही सिखाते थे। सामाजिक
समस्याओं ने, उनके दृष्टिकोण को व्यापक और उदार बनाया।

कबीर का नैतिक दर्शन मानव प्राणियों की समानता पर आधारित है।
"कबीर के अनुसार उपनिषद, शास्त्रों तथा अन्य पवित्र ग्रंथों की शिक्षायें आत्मिकों
को आध्यात्मिक संतुष्टि प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं। उनकी अपनी शिक्षायें
और जीवन किया ब्राह्मणों के दार्शनिक के प्रति एक कड़ा विरोध प्रस्तुत करती
है। कबीर के अनुसार लोगों को व्यवहार के सम्भाव और उपयोगी रूपों का विकास
करना चाहिए। एक दूसरे के साथ मानवतावादी व्यवहार होना चाहिए। उन्होंने
पारम्परिक जागरण आचरण की निदान की क्योंकि इससे मानव-मानव में भेद
बढ़ता है। उन्होंने जातिवाद एवं मानव ब्राह्मणवादों खुली चुनौती दी जो सम्राटाध्याद
तथा विभक्तिकरण के लिए उत्तरदायी थे।

जीवन के प्रति उनका नैतिक दृष्टिकोण, उनके एक ईश्वर में अनुभववादी
विश्वास का ही अविभाज्य अंग था। इससे नैतिक कर्त्तव्यों के पालन के लिए
धार्मिक शक्ति और मान्यता मिली और साथ-साथ धार्मिक आस्था तथा पूजा के
क्षेत्र में भी नैतिक पक्ष मजबूत हुआ। कबीर साहब ने तात्कस्व वाक-युक्तों की
अपेक्षा मानव आचरण की समस्याओं को अत्यधिक महत्त्व दिया। कबीर साहब
ने योगियों के आचरण की सदैव निन्दा की। नैतिक तथा धार्मिक जीवन के क्षेत्र
में उन्होंने उनके अभ्यासों को बिलकुल निरस्त कराया। उनके अनुसार कर्मकाण्डों
तथा निर्धारित तथा निर्धारित अभ्यासों से किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। यह
तो आत्मिक जीवन ही उपयोगी है जिसे आस्था तथा विश्वुद्ध हृदय से पूर्ण रखा
जा सकता है।

भक्ति आन्दोलन से सामाजिक समस्याओं में व्याप्त कठोरता में कुछ
शिखरता आयी। भक्तिवाद में प्रायथ्यित उत्सवों, कठोर तपस्याओं, शास्त्रों के
ज्ञान का कोई विशेष मूल्य नहीं था। भक्ति के लिए मन की एकाग्रता सदर्गुणों के
अभ्यास, धियन तथा मनन, सब प्राणियों के प्रति सम्भाव, भक्तों की निकटता,
ईश्वर के नाम का जप, उसकी प्रसंसा, प्रेम, दिव्यानन्द के लिए आतुरता आत्म—समर्पण आदि की आवश्यकता होती है। यही सब बातें कबीर के भक्तिवाद का मूलधार हैं। कबीर ने भक्ति आन्दोलन को सामाजिक संदेश के रूप में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया, जो उन्हें मानवीय दृष्टिकोण प्रदान करे। वस्तुतः कबीर ने हिंदू और मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र, राजा और रंग, पुजारी और मुल्ला, सभी को एक मानव—बन्धुत्व के सूत्र में पिरोंने का सत्ता प्रयत्न किया।

कबीर के सामाजिक, नैतिक एवं दर्शनिक विचारों सभी में भक्ति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जब कभी आचरण की शिक्षा देते हैं तो भक्ति प्रेम के रूप में ही करते हैं। कबीर साहब ने जिस प्रजातात्त्विक समाज आदर्श को परिलक्षित किया, वह अनेक संस्कृतियों का मिश्रण है उसे न हिंदू संस्कृति कह सकते हैं, न बौद्ध, जैन अथवा मुस्लिम। वे न तो वेद—कुरान के पक्षधर थे न मंदिर—मस्जिद के और न किसी वेश—भूषा के। उनकी शिक्षाओं में फकीर और साधू का भेद नहीं था। वे तो एक सामाज्य मानव के पक्षधर थे चाहे वह हिंदू हो अथवा मुसलमान। कबीर साहब केवल सामाजिक एकता तथा सुपूर्वता के पक्षधर थे।

कबीर साहब ने मानव आचरण के मूल्यांकन के लिए एक मानववादी मान्यता प्रस्तुत किया तथापि उनके अनुयायियों ने उनकी निर्धारित शिक्षाओं का अनुसरण नहीं किया क्योंकि उनकी मृत्यु पश्चात उनके शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं को धार्मिक संगठन अथवा कबीर पंथ में बदल दिया जो एक उपक हिंदू सम्प्रदाय बन गया।127. अतः उनको नदियाँ और अपराधियों में भेद की शुरुआत कर दी। कबीर समाजदर्शन के आत्मा के विन्युल विपरीत है। कबीर पंथी अन्य लोगों के साथ शूद्रों अथवा आचूरों की तरह व्यवहार करने लगे जो कबीर पंथी अपने आप को सामाजिक भेदभाव की संकुचित मानसिकता से मुक्त नहीं कर पाये। अतः उनका सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में प्रभावशील होता गया। वे
मनुष्यों के बीच उस समता भाव की स्थापना करने में असफल हुए जिसे कबीर साहब अपने जीवनकाल में विपक्षित करना चाहते थे।

(ड.) सिख धर्म

गुरुनानक (1469—1538) को भक्तिवाद की सामान्यता परम्पराओं में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गुरुनानक ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच चल रहे सामाजिक अलगाव और धार्मिक संघर्ष को खत्म करने का प्रयास किया। नानक ने हिन्दू धर्म और इस्लाम में व्याप्त रूढ़ियों एवं अन्य विश्वासों को दूर करने के लिए एक नये धर्म की स्थापना की क्योंकि स्वयं गुरुनानक अपना नाम हिन्दू धर्म अथवा इस्लाम के साथ नहीं जोड़ना चाहते थे; वह संसार के महान धर्मों में से अन्तिम धर्म प्रवर्तक माने गये। 128 उन्होंने सोहल्हीं शताब्दी में अपने नये धर्म की स्थापना सिख धर्म के नाम से की इसके अंतर्गत उन्होंने भक्तिवाद एवं सूफीवाद के विश्वासों के समन्वय का प्रयास किया। नानक ने 'मनुष्यों के रूप में सभी मनुष्यों की समानता, सांसारिक तथा आध्यात्मिक जीवन के आत्मिक समिश्रण, सामाजिक कर्त्तव्यों के अनुपालन सहित पूजा और ध्यान (प्राचीन)' के रूप में ईश्वर के नाम का बार-बार समर्पण, स्वीकार किया। 129 उनके अनुसार ईश्वर का नाम ही सब कुछ है और सभी बातें निर्धरित वाद-विवाद के घमण्ड का प्रतीक है। 130 नानक ने ईश्वर को 'केवल एक, सिर्फ़ वही अकाल सत्ता मानते हैं, ईश्वर सत्य, सत्यमूर्त, गूढ़, तथा नित्य है। ईश्वर सत्य का देव है, जो जगत के आर्थर होने के पूर्व था, है और रहेगा' अन्तिम प्रत्यय के रूप में वह सदैव रहेगा। 131 गुरुनानक के अनुसार ईश्वर उन्हीं को मूर्ख प्रदान करता है, जिनका कर्म शुभ और आचरण नैतिक है। 132 नानक ने अपने पूर्व सन्तों के सदुग्नों को अपने धर्म में समस्तित करके, निम्नलिखित बातों को स्वीकार करके धार्मिक कलह को मिटाने का प्रयास किया —

1. ईश्वर समस्त रंग—रूप से परे हैं।
2. धर्म में समाज सेवा का भाव महत्वपूर्ण है, और
3. धार्मिक मामलों में सब प्रकार के वाह्य आदम्बर निर्धारक एवम् अनुपयोगी है।

नानक के अनुसार सभी मानव प्राणियों के लिए जीवन का नियम आपस में प्रेम करना और प्रेमारूढ़ भक्ति के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करना है। इनके कथनानुसार समस्त मानव प्राणियों को एक अनुभवाती ईश्वर ने पैदा किया है जो मानवता की परीक्षा करता है और जगत की नैतिक व्यवस्था को बनाये रखता है। नानक ने कर्मकाण्ड को निर्धारण संकट उसकी निन्दा भी की है। हिंदू जाति व्यवस्था की जगतिलाइग से नानक अपनी तरह परिवर्तित थे। रिस्त्रों की दशा और शूद्रों तथा अच्छों की स्थिति से उन्हें अत्यधिक पीड़ा हुई। नानक कबीर आदि की भाति रिस्त्रों तथा शूद्रों के लिए समान अधिकार बनाते थे और उन्होंने अपने अनुयायियों को इसके लिए आदेश भी दिया। नानक ने सति-प्रथा का किरोष और विधाओं को पुनर्विवाह की अवधार दी। नानक ने आदमी के कर्मों को ती जाति का प्रतीक माना, मनुष्य व्यतिर ही अपने कर्मों से अपने को ऊँचा और नीचा बनाता है। "मनुष्यों को उनके कर्मों से ही परखा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के प्रतिफलों को भोगा पाता है और उसी के अनुसार हिसाब समायोजित होता है।"

नानक के अनुसार जाति भेद के चिंता नहीं करनी चाहिए। यह पहचानना जरूरी है कि ईश्वर का नूर सभी प्राणियों में है। ईश्वर के यहाँ किसी की जाति नहीं पूरी जाती। संसार में छोटे से छोटे लोग भी मौजूद हैं, नानक तो इन्हें लोगों के साथ रहेगा महान लोगों से उसे कोई लेना-देना नहीं है। जो लोग छोटे व्यक्तियों की देखभाल करते हैं उन्हें पर ईश्वर की कृपा दृष्टि होती है। प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य कुछ न कुछ अवशेष होता है। आधमी जगत में, जाति का कोई महत्व नहीं होता, वहां तो प्राणियों की नष्टी व्यवस्था है।

नानक ने कर्मकाण्ड और जातिवाद के प्रति जोरदार विरोध किया। इन्होंने ऐसे सुधारवादी आन्दोलन को प्रारंभ किया जिससे हिन्दूओं का इस्लाम धर्म की ओर रुझान कम हुआ। शूद्रों को समाज में कोई समानजनक स्थान प्राप्त नहीं
था अतः नानक ने उनकी दशा सुधारने के लिए प्रयत्न किया। उनके अनुसार श्रम कर्मों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी है। नानक के समाज दर्शन का मुख्य तत्त्व ईश्वर के प्रति भक्ति के साथ आदमी के श्रम कर्मों का जोड़ना है। श्रमकर्मों से ही किसी व्यक्ति के स्तर का मूल्यांकन किया जा सकता है। यज्ञ, हवन, वाल्ल, वर्ण, आश्रम, वेद की सत्ता, ब्राह्मण की प्रमुखता सभी का नानक जी ने बहिष्कार किया।

नानक यह मानते थे कि ईश्वर हर समय, हर स्थान में व्याप्त है एवं उसकी पूजा उसके नाम को जप कर होनी चाहिए। उनके अनुसार यज्ञों तथा बलियों के अनुपालन से आदमी नैतिक नहीं सकता। ये सत्य की तीरथस्थानों से भी बड़ा मानते थे। ईश्वर के प्रति व्रेम सभी धार्मिक कर्मों तथा उत्सवों, बलियों एवं किंवदंतियों के बच्चों से अच्छा होता है। नानक की दृष्टि में हर व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी है। मोक्ष का मार्ग सततगुरु ही दिखला सकता है क्योंकि उसने उस मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मोक्ष कोई भी प्राप्त कर सकता है। नानक ने कहा सबसे मानव प्राणी ईश्वर की निगाह में समान है वही सबका जन्मदाता है। ईश्वर सबका पिता है। सभी मानव प्राणी भाई-भाई है और उन्हें भाई चारे से रहना चाहिए जिससे उनके कर्म प्रेम और न्याय से प्रेरित हो सकें। इसलिए नानक ने अपने धर्म में “समाज नैतिकता में जाति संस्था को स्वीकार नहीं किया।” नानक का समाज चिंतन बुद्धि और धर्म योगी दोनों पर आधारित था क्योंकि सभी सिक्का मानवीय मामलों में हिंदू निश्चित परम्परा से शासित न होकर, बौद्धिकता तथा मानवता के आदर्शों से प्रेरणा लेते हैं। यदि यह सत्य है कि सभी मानव प्राणियों को ईश्वर ने पैदा किया है तो उनका समाज समानता तथा भावनात्मक एकता पर आधारित होना चाहिए। सभी में ईश्वर के प्रति भक्ति और अनुराग होना चाहिए। अतः नानक के धर्म में वर्णाश्रम व्यवस्था के लिए कोई स्थान नहीं है।
गुरुनानक द्वारा चलाया गया आन्दोलन पूरी तरह से सामाजिक प्रक्रियाओं में मौलिक परिवर्तन के लिए था। "उन्होंने हिन्दु शास्त्रों में वर्णित वर्ण विभाजन तथा आश्रम व्यवस्था को पूरी तरह से नकार दिया। उनके अनुसार कोई भी व्यक्ति महान पैदा नहीं होता और न ही कोई किसी से नीचा होता है समाज में आदर्श—आदर्शी के बीच दीवारों की उत्पत्ति के लिए उसके कर्म उत्तरदायी होते हैं। मनुष्य—मनुष्य के बीच सभी प्रकार के सामाजिक बदलाव का अंत करने पर उन्होंने जोर दिया।"41

नानक द्वारा चलाया गया आन्दोलन उसके उत्तराधिकारियों के सादिध्य में बहुत महत्वपूर्ण बनता गया। दस गुरुओं में से कुछ ने सिक्खों के प्रभावशाली समाज के विकास में भारी योगदान किया। एक और गुरु रामदास (1524—1581) ने अमृतसर में सिक्ख समाज को मजबूत बनाया, दूसरी और गुरु अर्जुन (1565—1606) ने अमृतसर की सिक्खों का पवित्र स्थान बनाया। उन्होंने आदिग्रंथ का संकलन किया अपने अनुयायियों के लिए सामाजिक और धार्मिक आचरण के निष्कर्ष नियम निर्धारित किये और धार्मिक उद्देश्यों के लिए सिक्खों के ऊपर कर लगाया ताकि सिक्ख संस्थाओं को सुदृढ़ बनाया जा सके। हरसोविन्द (1578—1645) शिकारी एवम् मांस भक्त बन गये यद्यपि नानक शाकाहारी थे। सिक्खों के लिए हरसोविन्द ने हथियारों के प्रयोग को अनिवार्य बनाया। उन्होंने सिक्खों को हिन्दुओं से पूरी तरह अलग कर दिया।"42 इस प्रकार एक स्वतंत्र सिक्ख समुदाय का उदय हुआ।

गुरु गोविन्द सिंह (1666—1708) ने सिक्खों को शक्तिशाली बनाया और 'खालसा' के नए पंथ को आरम्भ किया, जिसका अर्थ है बचे हुए अथवा मुक्त लोगों का पंथ। "ईश्वर की पूजा सत्यता तथा निष्ठापूर्वक करनी चाहिए। 'खालसा' पंथ में आस्था के द्वारा ही ईश्वर की सच्ची आराधना हो सकती हैं। सबको संगठित रूप में एक होना चाहिए। ऊँचे—नीचे सभी बराबर हैं, जाति को भुला देना चाहिए, उन्हें पहुँच (दीक्षा) स्वीकार करना चाहिए और चार जातियों
को एक ही जहाज में चलने वाले यात्रियों के समान एक ही होना चाहिए।"143 गुरु
गोबिंद ने "पानी के साथ मीठा मिश्रित करके उसका कुछ अंश पांच विश्वसनीय
शिष्यों – एक ब्राह्मण, एक श्रृणि और तीन शूद्रों के ऊपर छिड़का, जिनको
गुरु ने सिखों का नाम दिया और उन्हें खालसा घोषित किया।144

गुरु गोबिंद साहब ने देखा कि एकता के मार्ग में जाति बहुत बड़ी बाधा
है "अतः उन्होंने यह कहकर हिन्दू समाज व्यवस्था में जातिवाद एक उत्तरकालीन
उत्पत्ति है, बुराइ की जड़ों पर प्रहार किया, कोई आदर्श अपने को तब तक
सच्चा सिख्व नहीं कह सकता जब तक वह जाति पक्षपात का परियाम नहीं कर
dेता और अपने सिख्व–साथियों को भाई नहीं मानता। उनके अनुसार चार
जातियाँ पान, सुगन्ध, चूता तथा कल्याण की तरह है जिनमें कोई एक मुंह लाल
नहीं कर सकता, बांत मजबूत एवं जीभ को स्वाद नहीं दे सकता। उन्होंने
धार्मिक सुविधाओं की असमता का अन्त किया और धार्मिक जनतंत्र की
प्रतिस्थापना की।145 सिखांत: खालसा की सदस्यता अनिवार्य रूप से समानता पर
आधारित है।146 गुरु गोबिंद सिंह का सामाजिक दर्शन जनतात्मक तथा
मानवतावादी था। जाति भेद का अन्त, गुरु तथा एक दूसरे के साथ सुविधाओं
की समानता, सामान्य पूजा, सभी वर्गों के लिए सामान्य दीक्षा, सामान्य वाहा
संकेत इन सबका प्रयोग गुरु गोबिंद ने अपने अनुयायियों में एकता लाने के
लिए किया और सुविधाओं के समानों का मुकाबला करने के पूर्व, इन्हें बातों ने
सिखों को एकता के सूत्र में बाधा।

नानक–आन्दोलन ने सिखों को सामाजिक विकास की प्रक्रिया में एक
अलग समुदाय बनने में भारी योग दिया। सत्गुरूओं के समान व्यवहार पर जोर
देने के कारण उनमें सामाजिक एकता की भावना सुदृढ़ हुई। "अपने–अपने
भौतिक चोटों की भि न्ता के बाद भी सभी के साथ समानता का व्यवहार होना
चाहिए।"148 समानता तथा सामाजिक एकता के आदर्श ने सत्गुरूओं के मन को
मोह लिया, क्योंकि उससे दीन दुखियों को बड़ी सहायता मिलती है।149 सिखों
ने अपने आप को हिन्दुओं में विलीन नहीं होने दिया उन्होंने अलग सिख समाज की स्थापना की। समय के साथ हिन्दू और सिख अलग–अलग धार्मिक तथा सामाजिक समुदाय हो गये और उनमें वैश्विक उत्पन्न होने लगा। इसके 
अतिरिक्त सिखों में सबंध भी अलगाव की भावना का उदय होने लगा वास्तव में 
नानक के अनुयायियों ने, उनके समाज दर्शन के अनुयुप मानव सम्बन्ध के विचार 
को प्रयोग में नहीं लाये। उन लोगों ने उसके प्रति विद्रोह नहीं किया जिसके प्रति 
नानक ने किया था।

"जाति ने सिख समाज में अपना स्थान बना लिया।" उन्होंने इसका 
विरोध तो किया किन्तु "सिख व्यावहारिक जीवन में उसे त्याग नहीं पाये। सबंध 
कुछ सतुरु ही जाति का व्यवहार में परिवर्तन नहीं कर पाये।" इस समय 
सिखों ने जाति पक्षपातों के आधार पर अलग अलग समुदाय बना लिए और 
स्वर्ण हिन्दुओं की ही तरह पक्षपात पूर्ण व्यवहार कर रहे हैं। सिख धर्म का 
हिन्दू धर्म में विलीन होना एक स्पष्ट प्रक्रिया है और यह सिखों के उच्च एवम् 
शिक्षित वर्गों में ज्यादा प्रभावी है। इन वर्गों की नयी पीढ़ी केंद्र एवम् दाढ़ी रखने 
की परम्परा त्यागती जा रही है। ये लोग कहें का प्रयोग करते हैं परन्तु 
रूढ़िवादी खालिस्तान इस्लामी पवित्र मानते हैं। लेकिन इनकी संख्या कम ही है इसलिए 
ये अपने को हिन्दू धर्म में समाहित कर लेते हैं। अर्थात् सिख समाज में शिक्षा 
और आधुनिकता का व्यापक असर हो रहा है किन्तु फिर सिख लोग अपने 
सामाजिक एवम् धार्मिक आचरण में रूढ़िवादी हैं। उनमें धर्मभंगा और 
अन्धविश्वास घट चुका है। सिख समाज ने अपने व्यवहार में मानव संस्कृतियों की 
संरचना में भेद एवम् असमान आचरण की प्रवृत्ति को बढाना दिया है। स्पष्टतः 
सिख समाज के विचार एवम् व्यवहार में पर्याप्त अन्तर उत्पन्न हो गया है जो 
कि गुरुनानाक द्वारा संचालित मूल सामाजिक क्रांति के पक्ष में नहीं है।
(ब) मध्यकालीन सामाजिक दृष्टिकोण

मध्यकालीन की सामाजिक प्रक्रिया में ऐसी मुख्य प्रगति थी जिसमें विज्ञान की नित्यता में जीवन को एक क्षण मात्र माना और आदमी को एक महत्वहीन प्राणी का स्थान दिया। दु:ख के बन्धन में फंसा हुआ मनुष्य मुक्त होने का प्रयास करता है, लेकिन मुक्ति बना ईश्वर की कृपा के सम्बंध नहीं थी। मानव जीवन ईश्वर का एक महान उपकार माना गया। इसीलिए उसे बिना ईश्वर की दया के मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। व्यक्तिगत जीवन में त्याग एवं तप, सामाजिक जीवन के प्रति उपेक्षा, इत्यादि का दमन, भौतिक जगत में अरुचि आदि को शुभ जीवन के अंग माने गये। आदमी के जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष माना गया। इसीलिए सामाजिक सम्बन्ध की उपेक्षा की गई, सामाजिक सम्बन्ध के भी मोक्ष मार्ग में एक बाधा माना गया। परन्तु अन्तिम मुक्ति "इतनी परा-सामाजिक है कि आदर्श रूप के अतिरिक्त, उसे कोई समाज सिद्धांत अथवा समाज परिवर्तन मुश्किल से ही ध्यान में रहते हैं।"53 सांसारिक मामले मोक्ष और आवागमन की उपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थे लेकिन भक्तों की रुचि, सांसारिक समस्याओं में बहुत कम थी। मध्ययुगवादियों, अध्यात्मवादियों एवं समाज सुधारकों का ध्यान लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जैसे सांसारिक दु:ख की ओर केंद्रित नहीं हुआ।

भारतीय समाज विभिन्न छोटे-छोटे समुदायों में बंटा था। अनेकों प्रकार की जातियों थी। अध्यात्मवादियों ने इन जातियों व समुदायों को एक करने के लिए भारी प्रयास किया। किन्तु उन्हें सामाजिक सम्बन्ध की एकता में बांधा नहीं जा सका, यद्यपि इनमें कुछ बातें सामान्य थी। हिन्दू और मुसलिम समाज व्यवस्थाओं भिन्न थी व नई समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए उनमें कोई समझौता नहीं हुआ। वस्तुतः धार्मिक आन्दोलनों ने सामाजिक पुनर्गठन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनका लक्ष्य सामाजिक क्रांति नहीं था। मध्यकालीन सुलतानों के कठोर तथा कृत्रिम शासन काल में अधिकांश मनुष्य राजनीतिक एवं भौतिक प्रगति नहीं कर पाये इसलिए सूफी भक्ति आन्दोलन की मुख्य प्रगति
पलायनवाद भी लोग अन्य जगत में अपनी इच्छाओं की पूर्ति के विचारों में ध्यान रखे।154 शासकवर्ग राजनीतिक शक्ति एवम आर्थिक प्रमुखता प्राप्ति के संघर्ष में लीन रहे।155 और मध्य युग में लोगों की सामाजिक स्थिति ज्ञान की तौर तथा बनी रही।156 रूढिवाद सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने के प्रयास तो मध्यकाल में शुरू हुए परन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण इन प्रयासों का व्यापक प्रसार एवम सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इसमें कोई जुटी नहीं कि मध्यभारत के सन्तों ने "सामाजिक चेतना की आत्मारक गहराई को टटोलने का प्रयत्न किया। लेकिन लगता है कि उनके दृष्टिकोण में कुछ मौलिक कमी थी। धार्मिक उत्सव और कर्मकाण्ड किसी न किसी रूप में फिर अपनी जड़ें जमाने लगे जिनके खिलाफ इन सन्तों ने कोई आवाज बुलाने नहीं की। परंपरावाद, रूढ़िवाद, अन्यविश्वास आदि जन-जीवन में गहरे होते गये। वे अवधारणा पर उच्च जाति का विशेषाधिकार बना रहा। शूद्रों के लिए ज्ञानमार्ग वर्जित था।157 ये अन्द्रोलन, समाज सुधार के सूक्ष्म सन्त एवम भक्ति, सामाजिक नियतिवादी तथा ईश्वरीय भगवाद के चक्रवृत्त में संस्करण असहाय हो गये। ये लोग उन परिस्थितियों का प्रतिरोध नहीं कर पाये जिसने आदमी को आदमी से अलग किया, आर्थिक शोषण को बढ़ावा दिया और धार्मिक संघर्ष को उत्पन्न किया। मध्यकालीन भारत में, आदमी लगभग समानित पूर्वता-एक संयुक्त परिवार, एक जाति अथवा एक गांव समुदाय का अंग बन जीवित रहा। किसी विशेष जाति अथवा परिवार में आदमी के जन्म को उसके पिछले कर्मों के फलों से सम्बन्धित माना जाता। जाति ही मनुष्य के व्यवस्थाव व उसकी स्थिति को निर्दिष्ट करती है। अपनी जाति से बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं था। जाति नियमों का उल्लंघन करने पर उसे जाति से निकाल दिया जाता तो उसकी स्थिति धूःधल से बदलता हो जाती। पारस्परिक अलगाव जाति व्यवस्था की मूल विशेषता थी। प्रत्येक व्यक्तिगत क्रिया जाति-नियमों तथा कर्म के भाग्यवादी सिद्धांत से शाश्वत होती थी जो स्वतंत्रता, सृजनता तथा मानव समान के विरूद्ध था।158
मध्यभारत में सामाजिक ढांचा जाति व्यवस्था पर आधारित था शासक वर्गों
अध्यवं जातियों में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय लोग ही थे। जिनमें आपस में सत्ता के
लिए संघर्ष होता रहता था। इन लोगों ने संयुक्त रूप से शासन किया एवं अन्य
लोगों को अपने नीचे दबाये रखा। कालान्तर में जब व्यापार तथा उद्योग में वृद्धि
हुई वैश्व वर्ग धनी और प्रभावशाली बन गया। परन्तु राज्य की शक्ति में उसका
कोई वास्तविक प्रभाव नहीं था। जबकि शूद्रों की स्थिति आदि से अत्त तक निम्न
ही बनी रही।

इस प्रकार की स्थिति समूचे मध्य भारत की थी।

वैसे तो भारत में परिचम की तरह की श्रमिक दासता नहीं थी। किन्तु
हमारा सम्पूर्ण सामाजिक ढांचा एक के ऊपर दूसरी श्रेणियों पर आधारित था।
निम्न स्तर पर रहने वाले चोटी पर रहने वालों का बोझ सहाते थे, उनका शोषण
किया जाता था। चोटी पर रहने वाले हमेशा प्रयासरत रहते कि सत्ता उनके
हाथ में रहे। वे निर्धारित की शिक्षा के अवसर भी नहीं देते थे। यद्यपि यह सत्ती है
कि ग्राम पंचायतों में किसान वर्ग की पहुंच थी। परन्तु वहा भी ब्राह्मणों का
बोलबाला था। समाज में वर्ग तथा जाति भेद व्यापक था। साधन सम्पन्न तथा
शक्तिशाली व्यक्ति को समान मिलता था। इसके विपरीत साधन हीन एवं
निर्धारित लोगों को समान नहीं मिल पाता था। शूद्रों की तो छाया भी हेप थी।
किन्तु जातियों में अनेक उपजातियों थी। जिनमें व्यापक भेद थे, वे आपस में न
कोई सम्पर्क रखते और न ही विवाह सम्बन्ध बनाते थे। इस प्रकार मध्ययुग में
जातियों एवं उपजातियों का जाल बिछा हुआ था।

शूद्रों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। राजपूतों
और सामान्तों के शासनकाल में वे लोग जाति एवं छुआछूत के और शिकार हो
गये। उनका आर्थिक शोषण भी बढ़ गया। धार्मिक आन्दोलनों के उनके
सामाजिक उत्थान में, उन्हें कोई मदद नहीं की। मुस्लिम समाज भी श्रेणियों में
विभक्त होने लगा। वे मुसलमान जो पहले हिन्दू थे उन्हें सन्देह की दृष्टि से
देखा जाता था। इस युग में रित्रियों की हालत अत्यन्त शोचनीय थी। वे खुदे समाज में नहीं रह सकती थीं। उन्हें समान अधिकार नहीं थे। शून्य में एवम् अछूतों, रित्रियों एवम् लड़कियों की शिक्षा बिल्कुल उपेक्षित रही। उन्हें मानवीय स्थिति नहीं प्राप्त हो पायी। उन्हें उनके ही समाज ने पशु-स्तर पर ला पटका। मध्यकालीन समाज में हिन्दू नारियों की दशा बड़ी सोचनीय थी। समस्त स्त्री समुदाय के प्रति, भक्तिवाद एवम् सूफीवाद के कारण, अनादरभाव तथा उदासीनभाव विद्यमान थे।

इस समय निर्धन और निर्धन होता गया, धनी और धनी बनता गया। प्रत्येक वर्ग ने दूसरे का शोषण कर अपना जीवन सुखमय बनाया। सामान्य लोग राजाओं की तरह विलासितापूर्वक जीवन जीते थे। मध्यकालीन समाज में दो प्रमुख वर्ग जर्मींदारी तथा जागीरदारों के थे। ये वर्ग काफी संख्या में नौकर-चाकर रखते थे। राज्य के धन का एक बड़ा हिस्सा इन पर खर्च होता था। राज्य कर व्यवस्था इन्हीं सब के कारण थी। ये दोनों वर्ग भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते थे। जबकि कितने ही लोगों को जीनेमार के लिए भोजन तक नसीब नहीं था। वत्मिकों के लिए कोई मजदूरी नहीं थी। दिनभर के कठोर परिश्रम के बाद रूखा-सूखा भोजन एवम् फटे-पुराने कपड़े पहनने को मिल जाते थे। वत्मिक वर्ग अपनी शक्ति से परिवर्तन नहीं था। मध्यकालीन समाज में सर्वत्र भक्तिवाद एवम् व्यक्तिगत पूजा का बोलबाला था। "राज्य शासक का ही व्यक्तित्व माना जाता था। वह समाज की सामूहिक इच्छा में व्याप्त राष्ट्राध्यक्ष का सिद्धान्त नहीं था। राज्य के प्रति भक्ति राजा के व्यक्तित्व के कारण होती थी। जो बड़ी लघुली और शीघ्र विकृत होने वाली थी। वैयक्तिकता पर आधारित राज्य अनिवार्यतः अस्थिर, तूफानों एवम्
दबाओं को झेलने के अयोग्य होता था। उसकी पत्नी उसे मुसीबत में भाम नहीं सकती थी। इस प्रकार राज्य में, "समाज की राजनीतिक सीमाएं भी कमजोर होती थी। पड़ोसियों के अधिकारों, क्षेत्रीय देशवासियों के बचन और मानूलित के प्रति प्रेम की कोई प्रमाणिकता नहीं होती थी। समूहों के रूप में संगठन एवं रूढ़िवाद विविधता पर आधारित सम्बन्ध बढ़े ही सुदृढ़ होते थे। जो रक्तिक सम्बन्ध में प्राप्त था, वह क्षत्रिय समाज की आप्रवासी थी। विवध प्रक्रिया किसी व्यक्ति विवेश के स्तर पर निर्माण होती थी न कि किसी विषय से सम्बन्धित कानूनी मसले पर।" अधिकांश आद्वादिकांशों को शूद्रों में गिना जाता जिनको राज्य में कोई राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त थे। राज्य की सल्तनत प्रभावशाली ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के हाथ में केंद्रित थी और अन्य में राज्य परिवार के हाथों में।" 

मध्यकाल में अधिकांश मुसलिम शासक निरंकुश एवं रूढ़िवादी थे। सुल्तानों की शक्ति को बाधित बाली कोई संस्था इस साल में नहीं थी। सुल्तान की इच्छा को कालून माना जाता था एवं न्याय सम्बन्धित बातों में उसका निर्णय ही सब को मानना होता था। अतः राजनीतिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह सामाजिक एकता एवं धार्मिक सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसीलिए भक्ति तथा सूक्ष्म आन्दोलनों के कोशिशों के बाद भी मध्यकालीन समाज जनतात्मक नहीं बन पाया और विघटनकारी प्रवृत्तियां अपने चरम को छूटे लगी।

धर्म की भूमिका भी समाज में विघटनकारी रही क्योंकि धर्म ने सामाजिक सम्बन्ध एवं राज्य एकता की प्रगति नहीं होने दी। धर्म – विवेश के प्रति आस्था ने लोगों को अपने ही सहकर्मियों की राज्य-भक्ति को स्वीकार किया और धर्म निर्देश अथवा धर्मात्मिक राज्य के प्रति विवेश प्रकट किया। धार्मिक रूढ़िवाद तथा अन्यविश्वास के फलस्वरूप समाज के लोग परस्पर एक नहीं हो सके। धर्म वर्ग हित का साधन बन गया और शोषित वर्गों को यह सांत्वना देता रहा कि उनके भावी जीवन में उनके इस श्रम का उन्हें अच्छा फल मिलेगा। जो सत्ता लोग इन निर्धन व्यक्तियों से हमदर्दी रखते थे वे रहस्यवादी अभ्यासों में
व्यस्त रहे और सामाजिक जीवन की यथार्थताओं की उपेक्षा करते रहे। हिन्दू तथा मुस्लिम समाजों ने पुराण विचारों, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं को निरंतर बनाये रखा। परिवर्तन को ये लोग कभी स्वीकार नहीं कर पाये। र लिय शासन तथा हिन्दुओं के राज्य, दोनों क्षेत्रों में, सामाजिक धितन रक्षामन बन गया और प्रत्येक प्रकार की परम्परा को पवित्र एवं अनुकूलणीय समझ जाने लगा। सर्वत्र सामाजिक कठोरता और उसका उल्लंघन करने पर दण्डों पर था।

धर्म तथा धर्माचार की राजनीति ने तो समस्त सामाजिक वातावरण को और दृष्टि कर रखा था।

मध्ययुग में शिक्षा पद्धति विल्कुल उपयोगितावादी तथा संकुचित थी। शिक्षक वर्ग शिक्षा की नवीन पद्धतियों से अनजान थे। शासन तथा पवित्र ग्रन्थों में जो कुछ वर्णित उससे इतर ये लोग कुछ नहीं मानते थे। इस कारण मानव बुद्धि रुढ़िवाद एवं अन्धविश्वास से मुक्त नहीं हो पायी। विद्यार्थी को जीवन की यथार्थता से अलग रखा। जिससे विद्यार्थी की दृष्टि कूटित हो गई वह सामाजिक सम्बन्ध की दूसरदर्शिता को नहीं समझ सका। उनमें परिवर्तन एवं प्रतिरोध के लिए रूढ़ि नहीं थीं। जीवन की वास्तविक समस्याओं के समाधान की प्रक्रिया में बुद्धि की अपेक्षा भावना का अधिक प्रयोग किया गया। जिसके फलस्वरूप वे समस्याओं आज भी विद्यामान हैं। सम्पूर्ण मध्यकालीन धितन की मूल प्रगति ईश्वरवादी थी। एक ही ईश्वर की मान्यता पर अत्यधिक बल दिया गया। उसे दयालु सच्चय तथा पालनकर्ता माना गया। ईश्वरीय भक्ति से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। यह विचारण ही थी कि भारतीय समाज के तात्पर्य एकता पर जोर देने के बाद भी व्यक्तियों तथा विभिन्न समुदायों में पारस्परिक विद्वेष मौजूद रहा और मानव एकता का विचार व्यावहारिक रूप धारण न कर पाया।

परिवार, ग्राम और जाति मध्य भारत में मौलिक सामाजिक संस्थाओं थी। राज्य का स्वयं प्रत्यक्ष: जाति अथवा परिवार के आन्तरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं था। वे स्वयं के परस्परागत नियमों से शासित होते थे, किन्तु
विभिन्न जातियों की सामाजिक स्थिति में उनका स्तर राज्य के द्वारा निर्धारित होता था।\textsuperscript{189} शूद्रों एवम् अछूतों की स्थिति दयनीय बनी रही, वैसे तो ईस्वर की निगाह में सभी समान बताये गये भक्ति-वाद के सन्तों द्वारा किन्तु निम्न जातियों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। धर्म ने भी उनकी कोई सहायता नहीं की। उस समय धार्मिक पाखंड दंभ, कृत्रिम एवम् कठोरता ने मानव सीमा का उल्लंघन कर दिया था जिसके फलस्वरूप धर्म की सार्थकता समाप्त हो गई।

अहार्यविवे शताब्दी में भारतीय समाज दो बड़े भागों में विभाजित था एक तरफ ऊँची जाति के बोड़े से शासक तथा मुस्लिम साम्राज्य और दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग। राजनीतिक एवम् आर्थिक स्तर दो घटों के हाथों में निहित थी। मुस्लिम साम्राज्य एवम् उच्च जातियों कानून एवम् न्याय के संस्थाक माने जाते थे।

"इससे भी बड़तर यह था कि जब हिन्दू धर्म का लोगों ने परिवार करने का प्रयास किया तो भ्रामणवाद ने अपना पूर्ण दिवालियापन दिखाया। सच्चे ज्ञान का प्रसार करके, उसने ब्राह्मण के हाथों को सुदृढ़ बनाने के लिए कोई आन्दोलन नहीं छेड़ा।\textsuperscript{170} जाति ने भारतीय जीवन की एकता को खत्म किया है। वो जनतंत्र की प्रगति में बाधक है। इसी से उच्च जातियों में घमण्ड एवम् असम्यता उत्पन्न हुई एवम् नीच जातियों में हीनता एवम् दासता की भावना लोगों के सभी वर्गों में उसने सामान्य मानवता के किरास में चढ़ा अटकाया।\textsuperscript{171} अहार्यवीं शताब्दी में क्षेत्रवाद, भाषावाद, पृथक्कर्ता, धर्मविधानवाद कार्यालयक अलगाववाद, साम्राज्यवाद, जातिवाद, भ्रामणवाद मध्यभारत में प्रभाव पूर्ण में मौजूद थी। धर्म व दर्शन दोनों ने बौद्धकता निरोधी आन्दोलन का साथ दिया। मानव प्रेरणा बिश्वसनूत कृतित हो गई। जिससे संगठित जीवन के विचारों को प्रोत्साहित करने में वह असफल रही। व्यक्ति को तो अपना जीवन सुखमय बनाने के लिए प्रेरित किया गया किन्तु सम्पूर्ण समाज गतिशील बना रहा। सामाजिक अलगाव की भावना अपने चरम पर थी। धार्मिक रूढिवाद एवम् परम्परावाद ने सामाजिक मेलजोल के सभी रास्ते अवरुद्ध कर दिये। धर्म के क्षेत्र में बुद्ध का अभाव था और धर्म को पंडर, उत्सवों एवम् कर्मकांडों, अनेक अन्वेषणों, बौद्धिक मान्यताओं तथा कठोर
नैतिक संहिताओं के साथ जोड़ दिया। निराशावाद ने जीवन-दर्शन का स्वरूप धारण कर लिया। जिसके फलस्वरूप भाय्यावाद, आलस्य तथा निष्क्रियता बढ़ने लगी और एक कुचित जीवन एवम् संकुचित दृष्टिकोण विकसित हो गया।

मध्यकालीन भारत में सामाजिक जीवन बड़ी ही जटिल प्रक्रिया से आवश्यक था। उसमें ईश्वरवादी प्रलोभन, रहस्यवादी दृष्टि, कर्म तथा आवागमन के सिद्धांत, स्वर्ग-नरक के विचार, धर्म के अन्वेषण, आत्म-विरोधों की श्रंखला, राजनीतिक दयनीय आर्थिक स्थिति, जातिगत में भाव, आदि समाहित थी। इसके फलस्वरूप निर्धार वर्ष भयभीत रहता था। जिससे वे इस अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था के अन्तर्गत विद्रोह करने की ताकत नहीं जुटा पाये। सत्ताओं ने ईश्वर के समक्ष सभी समाज है का प्रचार किया परंतु सामाजिक जीवन में उनके लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया। मध्यकालीन जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में हैं टूटवाद था – सामान्य लोगों तथा सत्ताओं का हैं, चानान्द स्वर्ग तथा अन्यायपूर्ण समाज का हैं, अध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद का हैं, ईश्वरवाद तथा निरीक्षवाद का हैं, भक्तिवाद एवम् नासिकवाद का हैं, हिन्दू तथा मुसलम का हैं। इन्हीं कारणों से उत्पन्न हो गई। फलतः अंतःर्विषयी रात्रिवादी के भारतीय समाज एवम् विकल्प में आत्म-विरोधों के बीच जीवन त्रिसंकु बन झूलता रहा।

सन्दर्भ

1. एसोएफ हुसैन : इण्डियन कल्चर, पृ 22
2. सीधीचीट : हिस्ट्री ऑफ़ मिडियाल गेन्डा, इण्डिया, पृ 204
3. इन्काकलीपिडिया ऑफ़ रिलीज़ एंड एथिक्स, वाल्युम द्वितीय, पृ 94
4. राम रैना : इन्ट्रोडक्शन डू इण्डियन फिल्मस्टाफ़ी, पृ 229-230
5. आरएससी मुक्किया : दु कल्चर एंड आर्ट ऑफ़ इण्डिया, पृ 318
6. टारापूर्ण : इण्डियन् ऑफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, पृ 117
7. टारापूर्ण : इण्डियन् ऑफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, पृ 118-119
8. बीएनो लूकिया : इण्डियन ऑफ़ इण्डियन कल्चर, पृ 349
9. टारापूर्ण : इण्डियन् ऑफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, पृ 124
10. ताराचन्द्र: इन्फिलूएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन तलर, पृ 0 125
11. ताराचन्द्र: इन्फिलूएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन तलर, पृ 0 125
12. ताराचन्द्र: इन्फिलूएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन तलर, पृ 0 126-127
13. ताराचन्द्र: इन्फिलूएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन तलर, पृ 0 128
14. जी0एन0 रामस्य: राजस्थान फ्लैज, पृ 0 111
15. विषय निदेश, हिंदोसिह खण्ड 1, पृ 0 501-16, एम0ए0 मेहवाले ५०० पृ 0 154 साध हिदौनाट-इल्ले, रामवाणी, पृ 0 36 और आगे।
16. ए0ए0 बुधकथा, एविष्कर फ्लैज - एम0ए0रिङ्ग0 18, पृ 0 1-76 सुकथकर मेमोरियल एक्षन में पुनरुद्धार, पृ 0 278-337, विश्व पिसानी, फेस्ट शिप्ट धाम, पृ 0 152-170, आर0एम0 डॉडकर, पुनिवारिंग आफ सिलन रिश्य, 12, पृ 0 65-85
17. विषय निदेश, 3 पूजावलि, पृ 0 326
18. सुकथकर मेमोरियल एडिशन, पृ 0 44
19. सुकथकर मेमोरियल एडिशन, पृ 0 334-335
20. सुकथकर मेमोरियल एडिशन, पृ 0 308-316
21. भागवत पुराण 10.89 : 2-19
22. वैष्णव धर्म का उद्देश्य और विकास, पृ 0 156-57
23. वैष्णव धर्म का उद्देश्य और विकास, पृ 0 156-57
24. मनुसूर्ति, 10.43-44
25. भागवत पुराण 2.4.18
26. आर0के0 मुक्कर्जी: द कलचर एन्ड आर्ट ऑफ इण्डिया, पृ 0 312
27. भागवत पुराण कम से कम विषु के चालीस अवतारों का वर्णन करती है: टी0एस0रिक्लो: ए किंग्सल क्रिडी ऑफ द भागवत पुराण पृ 0 4
28. ए0बी0पास्तिक: सोसाइटी एंड गवर्नमेंट इन मिडियावल इण्डिया, पृ 0 211
29. रामधरी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, पृ 0 245एस0 राधाकृष्णन: द ब्रह्मसूत्र, पृ 0 56
30. एस0 राधाकृष्णन: द ब्रह्मसूत्र, पृ 0 56
31. एस0 राधाकृष्णन: द ब्रह्मसूत्र, पृ 0 56
32. आर0के0मुक्कर्जी: द कलचर एन्ड आर्ट ऑफ इण्डिया, पृ 0 316
33. ए0बी0पास्तिक: सोसाइटी एंड गवर्नमेंट इन मिडियावल इण्डिया, 212.
34. ताराचन्द्र: इन्फिलूएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन तलर, पृ 0 114
35. ताराबन्द: इमिटलेयन्स ऑफ इस्लाम ऑफ़ इलिज़ियन कल्चर, पृ 102
36. आर्थिकमुक्रण: द कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ़ इलिज़ियन, पृ 319
37. आर्थिकशास्म: शूद्राज हन इमिटलेयन इलिज़ियन, पृ 222, 277, (गीता IX, 32: मनुस्मृति, 1X335).
38. आर्थिकमुक्रण: द कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ़ इलिज़ियन, पृ 318
39. वार्णमुक्रण: गिरिम्स्की ऑफ़ मिझायवल इलिज़ियन कल्चर पृ 9
40. कंप्यूटरमोदरन: मैन एण्ड सोसाइटी इन इलिज़ियन फिल्मस्की पृ 68
41. भविष्यवाद का प्रथम चरण भगवदगीता के समय से लेकर तेरहवी शाताब्दी तक रहा।
   यह वह समय था जब इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया: भविष्यवाद का द्वितीय चरण
   तेरहवी शाताब्दी से लेकर अठठाहवी तक रहा, जब इस्लाम और हिन्दू धर्म का
   मिलन हुआ।
42. आर्थिकमुक्रण: वैश्विक, शैविक एण्ड मॉडरिन रिलीजियन्स सिस्टम्स पृ 3-4
43. वही, पृ 11
44. वही, पृ 30
45. गीता, पृ 1-27
46. गीता, पृ 4-13
47. जी0पी0योरा: इथोल्यूशन ऑफ़ मोर्ल्स इन द एपिक्स, पृ 130: (गीता: XIIIए 60
   मनुस्मृति: I 28-30)
48. मनुस्मृति: 28-30
49. जी0एन0फूयोरा: द क्राउन ऑफ़ हिन्दुइज्म, पृ 141: (गीता: XVIII,45)
50. जी0पी0योरा: इथोल्यूशन ऑफ़ मोर्ल्स इन द एपिक्स, पृ 149
51. टी0एस0 कृति: ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ भारतव पुराण, पृ 5
52. रामकांडी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय पृ 236
53. रामकांडी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, पृ 237
54. ताराबन्द: इमिटलेयन्स ऑफ़ इस्लाम ऑफ़ इलिज़ियन कल्चर, पृ 34
55. इमिटलेयन्स: हिस्ट्री ऑफ़ आर्थिन रूल इन इलिज़ियन, पृ 325-326
56. इमिटलेयन्स: हिस्ट्री ऑफ़ आर्थिन रूल इन इलिज़ियन, पृ 29-30
57. एम0थाइसन: ए सोसाइटी हिस्ट्री ऑफ़ इस्लामिक इलिज़ियन, पृ 120
58. वही, पृ 123
128

59. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय, पृ 245
60. भीरोदकोसामी—एन इन्टरडिज्न कू इण्डियन हिस्ट्री, पृ 344
61. बुद्ध प्रकाश: आस्पैक्ट्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिएशन, पृ 237
62. जेड पुरुषी — औरंगजेब एण्ड हिज हाइस्सा, पृ 140
63. भीरोडवेल: हिस्ट्री ऑफ आर्थेन फूल इन इण्डिया, पृ 330
64. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय, पृ 241
65. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय, पृ 241-242
66. भीरोडवेल: इर्वोल्यूशन ऑफ इण्डियन कल्चर पृ 386
67. वही पृ 385-386
68. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृति के चार अध्याय, पृ 58
69. यूसुफ हुसैन: रिलम्पज ऑफ मिडायवल इण्डियन कल्चर, पृ 13-14
70. वही, पृ 14
71. जेड पुरुषी कामिनिधिम: हिस्ट्री ऑफ सिक्स्स पृ 30
72. आरोडोमकर्ज़ी: द कल्चर एण्ड अर्ट ऑफ इण्डिया, पृ 321
73. वही, पृ 338
74. भीरोडवेल: इर्वोल्यूशन ऑफ इण्डियन कल्चर पृ 452
75. आरोडोमकर्ज़ी: द कल्चर एण्ड अर्ट ऑफ इण्डिया, पृ 303
76. एसो राधाकृष्णन: द ब्रम्हसूत्र, पृ 82
77. वही, पृ 92-93
78. आरोडोमकर्ज़ी: वैश्विक, रैजिज्म एण्ड मॉडनरिज्म्स सिस्टम्स, पृ 83
79. आरोडोमकर्ज़ी: द कल्चर एण्ड अर्ट ऑफ इण्डिया, पृ 340
80. एसो राधाकृष्णन: द ब्रम्हसूत्र, पृ 82 एफ-एन
81. वही, पृ 93
82. एसो राधाकृष्णन: द ब्रम्हसूत्र, पृ 101-102
83. वही, पृ 102
84. एसो एलवित्सःन-रिलिजेज़ सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज, पृ 66
85. भीरोडवेल: इर्वोल्यूशन ऑफ इण्डियन कल्चर पृ 393
86. एसो एलवित्सःन-रिलिजेज़ सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज, पृ 249-251
87. एसो एलवित्सःन-रिलिजेज़ सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज, पृ 57-58
88. एसो एलवित्सःन-रिलिजेज़ सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज, पृ 257-258
89. एचओएचओविल्सन: सेक्टर ऑफ हिंदूपुर, पृ 56
90. वीएनलूनियः इवोल्यूशन ऑफ इण्डियन कल्चर पृ 393–394
91. एसीबीवननजी: गुरुनानक एण्ड हिज टाइम्स, पृ 53–54
92. आरफूकोमुक्कजी: द कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इण्डियन, पृ 352
93. आरजीएम्.डकरकर: वैमानिक, रेलवेम एण्ड माइनरसिलिजियंस सिस्टम्स, पृ 95
94. वही, पृ 99
95. आरफूकोमुक्कजी: द कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इण्डियन, पृ 352
96. जेएफीकॉनिधधम: हिस्ट्री ऑफ सिक्स्फु, पृ 31–32
97. एसएफएश्रीनिवास: सोशल चेन्ज इन मॉडर्न इण्डियन, पृ 25
98. मजुरसदर/रायबोधी/दल: एनएडवांस्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डियन, पृ 403–404
99. तारारन्द: इण्डियनएस्ट्री ऑफ इस्लाम ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ 224
100. जीएनन्समी: राजस्थान स्टडीज, पृ 123
101. केएनमौ प्रणयक: ए सर्व ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ 144
102. नीए एडेसाई: विशेष ऑफ मार्कर्ड इण्डिस्ट्री, पृ 45
103. एसीबीवननजी: गुरुनानक एण्ड हिज टाइम्स, पृ 3
104. पटक्ष्ण द्वारा लेख: फॉर्ब्स कॉलेज़ मेगेजिन (पूना), फरवरी, पृ 142
105. वही, पृ 33–34
106. जेएफीकॉनिधधम: हिस्ट्री ऑफ सिक्स्फु, पृ 30
107. जीएनमैक्स्टी + मार्कर्ड इण्डियन कल्चर, पृ 16
108. केएनमौप्रणयक: ए सर्व ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ 144–145
109. वही, पृ 145
110. जेएनमौ फुरूस्कार: द क्राउन ऑफ हिन्दुइज्म, पृ 203
111. वही, पृ 400
112. वही, पृ 387
113. नीए एडेसाई: वि मेन ऑफ मार्कर्ड इण्डिस्ट्री, पृ 40–41
114. एसएफएश्रीनिवास: सोशल चेन्ज इन मॉडर्न इण्डियन, पृ 26
115. एश्रीपा: सोशल ईछी एण्ड गवर्मेंट इन मिडियाज्वल इण्डियन, पृ 216
116. जीएनमौफुरूस्कार: द क्राउन ऑफ हिन्दुइज्म, पृ 141 : (सीता: XIII 45)
117. आरफूकोमुक्कजी: द कल्चर एण्ड आर्ट ऑफ इण्डियन, पृ 326
118. एसीबीवननजी: गुरुनानक एण्ड हिज टाइम्स, पृ 87
119. यूसुफ बनर्जी : रिलेशेज ऑफ मिडियाल इन्फोर्मेशन कल्याण, पृ 216
120. आरोकुमर, वहीं पृ 325
121. केरॉमोल्सेन: मिदियाल मिस्ट्रीसिन्ज ऑफ इन्फोर्मेशन: पृ 90
122. यूसुफ बनर्जी : रिलेशेज ऑफ मिडियाल इन्फोर्मेशन कल्याण, पृ 23
123. केरॉमोल्सेन: मिदियाल मिस्ट्रीसिन्ज ऑफ इन्फोर्मेशन: पृ 99
124. यूसुफ बनर्जी : रिलेशेज ऑफ मिडियाल इन्फोर्मेशन कल्याण, पृ 26
125. यूसुफ बनर्जी : रिलेशेज ऑफ मिडियाल इन्फोर्मेशन कल्याण, पृ 25
126. वहीं, पृ 25
127. जेओएनफक्सहर: द कालेन ऑफ हिन्दूइज्ञ, पृ 332
128. एलसीबनर्जी: गुरुनाराक ऐंड हिज टाइम्स, पृ 212
129. अल्मफबक: इस्लामिक इनफॉलुएंस ऑफ इन्फोर्मेशन सोसाइटी: पृ 175-176
130. एलसीबनर्जी: गुरुनाराक ऐंड हिज टाइम्स, पृ 144
131. जेओडीकोन्सियम: हिस्ट्री ऑफ सिक्कजम, पृ 38
132. वहीं, पृ 39
133. जेओडीकोन्सियम: हिस्ट्री ऑफ सिक्कजम, पृ 28
134. एलसीबनर्जी: गुरुनाराक ऐंड हिज टाइम्स, पृ 162
135. वहीं, पृ 175
136. शेष सिंह: फिलोसोफी ऑफ सिक्कजम, पृ 25-26
137. जीओसीनागर्ज: ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सिक्कजम, पृ 25-26
138. वहीं, पृ 25
139. अवतार सिंह: एरिक्स ऑफ द सिक्कजम, पृ 25-26
140. शेष सिंह: फिलोसोफी ऑफ सिक्कजम, पृ 94-95
141. एसोएसकोहली: फिलोसोफी ऑफ गुरुनाराक, पृ 39
142. जेओडीकोन्सियम: हिस्ट्री ऑफ सिक्कजम, पृ 51
143. वहीं, पृ 63
144. वहीं, पृ 65
145. जीओसीनागर्ज: ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सिक्कजम, पृ 80
146. अवतार सिंह: एरिक्स ऑफ द सिक्कजम, पृ 169
147. जीโอसीनागर्ज: ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सिक्कजम, पृ 83
148. अवतार सिंह: एरिक्स ऑफ द सिक्कजम, पृ 165
149. वहीं, पृ० 166
150. जेनन फर्भारार : द क्राउन ऑफ हिन्दूइज्म, पृ० 388
151. जीनरलरा: किलोरिफर हिस्ट्री ऑफ सिकिज्म, पृ० 284
152. खुशवान सिंह: ए हिस्ट्री ऑफ द सिकिज्म, Vol.II पृ० 302–303
153. दयाकुश : ए बीअरी ऑफ सोशलवेज्ज, 1965, पृ० 187
154. एएलोरवास्तव : मिडियावल इङ्ग्लिश कल्चर, 1971, पृ० 43–44
155. हूमायू कबीर : द इङ्ग्लिश हेरिटेज, 1962, पृ० 61
156. वहीं, पृ० 21
157. जीननशर्मा : राजस्थान स्टैडीज, पृ० 124
158. केदारमोदरन : मेल एण्ड सोसाइटी इन इङ्ग्लिश फिलासफी, पृ० 75
159. महायुग में जुकावायर ने इसकी रचना की।
160. जीवांमल लाल इङ्ग्लिश जुवेस्ट, 1963, पृ० 89–85
161. जीऑरोजट: सोशल फिलासफी ऑफ डॉ एमेडकर, पृ० 24–25
162. एमपुली, इस्लामिक इङ्ग्लिश ऑन इङ्ग्लिश सोसाइटी, पृ० 65
163. ताराबल्ड हिस्ट्री ऑफ क्रिडम मूवमेंट इन इङ्ग्लिश, खडंड–1, पृ० 272
164. ताराबल्ड हिस्ट्री ऑफ क्रिडम मूवमेंट इन इङ्ग्लिश, खडंड–1, पृ० 272
165. मीशीनवास्तव हिस्ट्री ऑफ मिडियावल हिन्दू, इङ्ग्लिश, पृ० 220
166. ताराबल्ड: हिस्ट्री ऑफ क्रिडम मिडियावल हिन्दू, इङ्ग्लिश, खडंड–प्रथम, पृ० 272
167. केंडफायरिंग: हिन्दू सोसाइटी एट क्राउस रोड्स, पृ० 73
168. वहीं, पृ० 74
169. एनरोसोवल: ब्रिटिश इङ्ग्लिश ऑफ इङ्ग्लिश—स्टैडीज़ इन द कल्चर एड हिस्ट्री ऑफ इङ्ग्लिश, पृ० 297
170. केंडफायफरिंग: हिन्दू सोसाइटी एट क्राउस रोड्स, पृ० 98
171. हमायू: कबीर: द इङ्ग्लिश हेरिटेज, पृ० 48